पारिवारिक मूल्य
तथा
सुख से पारिवारिक जीवन जीने की कला

(संयोजिका मार्ग-प्रदर्शिका)

Family Values
And
Art of Living Happy Family Life

(Facilitators' Guide)

महिला प्रभाग:

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व–विद्यालय
तथा राजयोग एज्युकेशन एण्ड रिसर्च फाउन्डेशन

माऊण्ट आबू, राजस्थान

पाठ्यक्रम (सूची)

1. 'पारिवारिक मूल्य' अथवा 'पारिवारिक जीवन जीने की कला' नामक पाठ्यक्रम की रूप-रेखा, विधि एवं उद्देश्य 03
   1. बात मूल्यों की और कला की;
   2. कोर्स के लिए छोटे-छोटे ग्रुप;
   3. कोर्स की विधि क्या होगी?
   4. मध्यानोत्तर सत्र;
   5. सायंकालीन सत्र।

2. पारिवारिक मूल्यों से सम्बन्धित कोर्स की आवश्यकता 06
   1. परिवार की सदस्यता जूरूरी;
   2. जैसा परिवार वैसा समाज;
   4. वर्तमान समय के परिवार के लक्षण;
   5. 'घर' अब सराय-जैसे ही बन गये हैं;
   6. परिवार के सदस्यों की नाव मंज़िल की ओर;
   7. पारिवारिक जीवन में सुख-शान्ति के लिए जीवन जीने की कला;
   8. पारिवारिक जीवन जीने की कला कौन सिखा सकता है?
   9. प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व-विद्यालय द्वारा इस की शिक्षा;
   10. घर-परिवार दिव्य गुणों के लिए एक प्रयोगशाला;
   11. कर्मों का लेखा-जोखा;
   12. कर्मों को छोड़ना नहीं, श्रेष्ठ बनाना है और योगाग्नि द्वारा विकर्म दग्ध करने हैं;
   13. पारिवारिक जीवन जीने की कला की शिक्षा विशेषत: माताओं द्वारा;
   14. इस कोर्स के लिये निमन्त्रण;
   15. इस कोर्स से लाभ;
   16. इस सत्र के लिए कुछ मुख्य प्रश्न

3. घर-परिवार की कुछ समस्याएं और उनके मूल कारण 13
   1. दिनचर्या ही ठीक नहीं;
   2. वातवरण का ठीक न होना;
   3. प्रभुत्व जमाने, अपनी बात मनवाने, संकीर्णता, जिद्द और सिद्ध करने की आदतें तथा समायोजन (Adjustment) का अभाव;
   4. भ्रान्ति, बहकावे, चुगली, टाँट करने की आदतें तथा धीरज और सहनशीलता की कमी;
   5. सहयोग और सन्मान का अभाव;
   6. संस्कारों का टकराव;
   7. प्रेम और नेम (नियम) में सन्तुलन का न होना;
   8. ग़लतफ़हमी और सुनी-सुनाई बातें;
   9. परस्पर वार्तालाप में संकोच (Lack of communication) और मेल-जोल में कमी;
   10. जीवन में व्यसन;
   11. निरर्थक रीति-रिवाज़;
   12. फज़ूल ख़र्ची;
   13. उचित प्रोत्साहन (Appreciate) देने में कमी;

14. भोजन सात्विक नहीं;
15. मूल कारण है दृष्टि, वृत्ति, स्मृति, स्थिति और कृति का ठीक न होना;
16. दृष्टि, वृत्ति, स्मृति, कृति, इत्यादि का आधार है हमारी मान्यताएं;
17. अपने बारे में मन्तव्य;
18 इस सत्र के लिए कुछ प्रश्न।

4. छोटा परिवार और विराट परिवार, विनाशी सम्बन्ध, अविनाशी सम्बन्ध और स्व की पहचान 22
1. क्या पूर्व कर्मों के आधारर के बिना ही किसी परिवार में जन्म होता है?
2. क्या पूर्व कर्मों का होना यह सिद्ध नहीं करता कि शरीर में कोई ऐसी अव्यक्त सत्ता है जो जन्म से पहले भी थी?
3. वह अव्यक्त सत्ता क्या है जो अपने लिए 'मैं' शब्द प्रयोग करती है?
4. 'मैं' शब्द का प्रयोग हर आयु, हर लिंग वाला करता है तो अवश्य ही प्रयोक्ता शरीर से भिन्न होगा;
5. अव्यक्त सत्ता देह नहीं ''देही'' है, शरीर नहीं आत्मा है;
6. प्रकृति के बने पदार्थों का प्रयोजन किसी चेतन कर्त्ता और भोक्ता ही के लिए;
7. आत्मा सृष्टि रंग-मंच पर एक्टर, देह इसके वस्त्र;
8. जबकि आत्मा दिखाई नहीं देती तब उसका अस्तित्व कैसे माना जाए?
9. परिणाम को देख कर कारण या कर्त्ता को मानना।

5. समायोजन, सहनशीलता, मधुरता, नम्रता, धीरज और परस्पर वार्तालाप 33
1. समायोजन;
2. सहनशीलता;
3. मधुरता को कैसे धारण करें?
4. नम्रता अथवा झुकना; ५. धीरज;
6. परस्पर वार्तालाप;
7. चर्चा के लिए कुछ प्रश्न।

6. कर्त्तव्य एवं अधिकार का तथा स्नेह, सहयोग एंव प्रोत्साहन का औचित्य तथा मिथ्या अनुमान, जोश, रोब और प्रभुत्व जमाने की आदतें 42
1. कर्त्तव्य और अधिकार परस्पर सम्बन्ध पर आधारित;
2. स्नेह, सम्मान और सहयोग;
3. मिथ्या अनुमान या श्रद्धा सन्मान?
4. जोश;
5. रोब डालने की आदत;
6. घर का वातावरण;
7. दिनचर्या कैसी हो?
8. कुछेक प्रश्न।

7. सकारात्मक चिन्तन, सादगी, सात्विक भोजन और सन्तुलन तथा समान व्यवाहार करने, भूल मान लेने, प्रायश्चित करने तथा स्व-शासन रूपी गुण 54
2. सादगी;
3. सात्विक भोजन;
4. सन्तुलन प्रेम और नेम का तथा दृढ़ता और कोमलता इत्यादि का।

'पारिवारिक मूल्य' अथवा 'पारिवारिक जीवन जीने की कला' नामक पाठ्यक्रम की रूप-रेखा, विधि एवं उद्देश्य

'पारिवारिक मूल्य' (Family Values) अथवा 'पारिवारिक जीवन जीने की कला' (Art of living a happy family life) नामक यह पाठ्यक्रम (Course) पारिवारिक जीवन को एक नई दिशा देने के लिये बनाया गया है। इसका मूल उद्देश्य यह है कि पारिवारिक जीवन में स्थायी पवित्रता, सुख और शान्ति तीनों हों। दूसरे शब्दों में, हरेक परिवार में मंगल-कुशल, सुख-स्वास्थ्य और आनन्द-मौज हो, अर्थात् हर घर स्वर्ग के समान हो। जब हम घर को स्वर्ग बनाने की चेष्टा और उसके लिये आवश्यक पुरुषार्थ करेंगे, तभी तो यह संसार स्वर्ग समान बनेगा। अत: हर कोई कम-से-कम अपने परिवार को पवित्र, सुख-शान्तिमय बनाने की जिम्मेवारी ले या उस कार्य में सहयोग दे तभी यह विश्व एक बेहतर विश्व बनेगा। इस कोर्स का उद्देश्य यह है कि इसके करने वालों को यह प्रेरणा मिले कि वे अपने पारिवारिक जीवन को सुखी बना सकते हैं और वे इसके लिये विधि-विधान भी जान सकें।

बात मूल्यों की और कला की

यदि गहराई से देखा जाये तो आज घर-परिवार में जो कलह-कलेष अथवा दु:ख है, उन सभी का मूल कारण किसी-न-किसी नैतिक मूल्य अथवा दिव्य गुण का अभाव है। दूसरे शब्दों में आज सहनशीलता, मधुरता, नम्रता, समायोजन, स्नेह, सहयोग इत्यादि की कमी के कारण भी घर-परिवार दु:खी है। अत: उन नैतिक मूल्यों अथवा दिव्य गुणों के विकास की आवश्यकता है।

कोर्स के लिये छोटे-छोटे ग्रुप

इस कोर्स को करने के लिये ग्रुप अगर छोटे हों तो अच्छा होगा। प्रयत्न ऐसा किया जाए कि 50-60 से अधिक बड़ा ग्रुप न हो क्योंकि इस कोर्स को करने-कराने की विधि यह होगी कि सभी उसमें रुचि से हिस्सा लें। उनका मनोयोग यदि कोर्स में नहीं होगा तो उसका पूरा फल नहीं निकलेगा। इसलिये, उनकी भागीदारी (involvement) आवश्यक है।

कोर्स की विधि क्या होगी?

शुरू करने से पहले कोई वरिष्ठ बहन कोर्स-चालक (Facilitator) का संक्षिप्त परिचय देगी। तब कोर्स का उस दिन के विषय पर सत्र कराने वाली बहन इस कोर्स के मुख्य विषय तथा उस दिन के उप विषय को बोर्ड (Board) या फिलप चार्ट (Flip Chart) पर बड़े अक्षरों में लिख कर उस दिन के विषय पर चर्चा प्रारम्भ करेगी। उसमें पहले कोर्स को कराने वाली बहन उस मुख्य विषय पर भूमिका अथवा प्रवेशिका (Introduction) के तौर से कुछ कहेगी। उदाहरण के तौर पर

यदि पहले पाठ का विषय यह है कि ''**घर-परिवार की समस्याएँ क्या हैं और आज परिवार की हालत क्या है?**'', तो इस विषय में वह सार-संक्षेप में कुछ बतायेगी कि कलह-कलेष है, लोगों में आपस में अनबन है, वे एक-दूसरे के व्यवहार से सन्तुष्ट नहीं हैं और स्नेह की बजाए स्वार्थ अनुभव करते हैं। इस प्रकार 8-10 मिनट बोल कर, वह सभी को तीन मिनट मौन करा कर कोर्स करने वालों से पूछेगी कि – आप लोग अपने अनुभव से बतायें कि आज के परिवार के सुखी और शान्तिमय न होने के क्या कारण हैं? जो-जो उत्तर मिलें, उन्हें वह दो-तीन शब्दों में फिलप-चार्ट (Flip Chart) पर लिखती जायेगी। उदाहरण के तौर पर यदि कोर्स लेने वाली बहन कहती है कि आज परिवार के सदस्य एक-दूसरे को सन्मान नहीं देते हैं और ऐसा लगता है कि प्यार तो समाप्त ही हो गया है और अधिकतर उसकी जगह स्वार्थ ही आ गया है, तो वह फिलप चार्ट पर दो स्तम्भ (Column) बनाकर एक में लिखेगी स्नेह और सन्मान नहीं है। दूसरे कालम में लिखेगी – स्वार्थ है। इस प्रकार चर्चा आगे बढ़ेगी और हरेक के उत्तर पर ध्यान दिया जायेगा। यदि कोई उत्तर पहले आ चुका है और केवल भाषा ही का भेद है तो कोर्स-चालक (facilitator) बहन कह देगी कि यह बात तो पहले आ चुकी है। अब वह फिर फ़िलप चार्ट पर उस स्थान पर ईशारा कर के बताये। अगर कोर्स करने वाली बहन कहती है कि भेद केवल शब्दों का ही नहीं है बल्कि भाव या अर्थ में भी सूक्ष्म या विशेष अन्तर है, तब उस पर चर्चा करवेके उसे भी सम्मिलित कर लेगी। कोशिश की जायेगी कि समय की सीमा में ही ये कार्य समाप्त हों। इसके बाद वह सत्र (Session) में सम्मिलित होने वालों से पूछेगी कि इस विषय में उनके जीवन में अनुभूति में आये हुए कोई विशेष वृतान्त हों तो वे बताएँ। ऐसे सारे विषय की चर्चा के दौरान कुछ ऐसी बहनों से, जो कि सार-संक्षेप में और दिलचस्पी पैदा करने वाली भाषा में कुछ अनुभव सुना सकती हो, सभी के साथ वृत्तान्त सुन ले ताकि क्लास में रुचि भी बनी रहे और विषय का महत्व भी अच्छी तरह से समझ में आये।

मध्यानोत्तर सत्र (Afternoon Session)

उसके बाद उसी दिन मध्यानोत्तर सत्र (Afternoon Session) में, प्रात: के सत्र की तरह सभी का इकट्ठा सत्र होने की बजाए 5-5, 6-6 व्यक्तियों के छोटे ग्रुप्स (groups) में बंटा हुआ हो। वे मिलकर उन पारिवारिक मूल्यों की चर्चा करें जिनकी सूची प्रात: बनी थी। हरेक ग्रुप में एक या दो गुणों पर चर्चा करते रहें। इस विषय पर मंथन करें कि अब इन मूल्यों की पारिवारिक जीवन में स्थापना कैसे की जाये। उदाहरण के तौर पर एक ग्रुप इस विषय पर चर्चा करे कि पारिवारिक जीवन में समायोजन अथवा अनुरूपता (Adjustment) का गुण कैसे आये और दूसरा इस विषय पर चर्चा करे कि भिन्न-भिन्न संस्कार होने के बावजूद भी हम जीवन में सहनशीलता और मधुरता या पारस्परिक स्नेह और सन्मान को कैसे बनाये रखें?

सायंकालीन सत्र (Evening Session)

सायंकालीन अधिवेशन में हरेक ग्रुप की ओर से कोई प्रतिनिधि एक संक्षिप्त-विवरण (Summary) सुनाये और सुनने वालों में से यदि कोई प्रश्न करना चाहे तो प्रश्न कर सकते हैं।

हरेक सत्र का प्रारम्भ और अन्त कुछ मिनट मौन स्थिति से किया जाये और कभी मौन के महत्व को भी बताया जाये।

पहले दिन जब सब इकट्ठे होंगे तो कोर्स और क्लास प्रारम्भ होने से पूर्व सत्र में एक-दूसरे का परिचय तो कराया ही जायेगा।

हर एक प्रात:कालीन सत्र में जिस विषय पर चर्चा होगी संयोजिका बहन (Co-ordinator) अथवा कोर्स-संचालिका बहन (Facilitator) उस विषय को प्रारम्भ करने के लिये या उसकी भूमिका बनाने के लिये जो कुछ कहेगी, हमने सुझाव के तौर से उसके लिये कुछ विचार लिपिबद्ध किये हैं। वो उस तरह की कुछ वार्ता प्रस्तुत करेगी और सत्र के दौरान में भी ख्याल करेगी कि उसमें लिखी हुई सभी बातें चर्चा में किसी-न-किसी तरह आ जायें। इस पाठ्यक्रम में लेखों में दी गई सामग्री के अतिरिक्त सत्र में सम्मिलित बहनें भी कई नई-नई मूल्यवान बातें बतायेंगी ही। वो तो सब इसके साथ शामिल हो ही जायेंगे।

हरेक पाठ (लेख) के अन्त में हमने कुछ प्रश्न दिये हैं, उन प्रश्नों पर चर्चा करने से विषय स्पष्ट हो जायेगा। ऐसे कुछ प्रश्न सत्र में कोर्स करने वाली बहनें भी करेंगी ही।

हर पाठ के अन्त में कुछ ऐसी बातें अवलेख में लिखी हुई मिलेंगी जो कि मध्यानोत्तर कार्यशाला या अगले दिन के सत्र के बारे में मार्गदर्शना देंगी और कोर्स करने वालों की मानसिक तैयारी (Mental Preparation) करेंगी।

अनुभव के अनुसार इन पाठों को परिवर्तित भी किया जा सकता है। घटाया-बढ़ाया भी जा सकता है और इनमें से कुछ कम करके कुछ नये जोड़े भी जा सकते हैं।

सभी सत्रों को कराते समय ये ध्यान में रखना ज़रूरी है कि हमारा मूल उद्देश्य नैतिक मूल्यों और दिव्य गुणों की धारणा पर प्रकाश डालना, ईश्वरीय ज्ञान की मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों को स्पष्ट करना, सहज राजयोग में रुचि उत्पन्न करना तथा इस सबके द्वारा पारिवारिक जीवन को सुधारना है। बाकी सब चर्चा इन्हीं मुद्दों को ध्यान में रखकर ही की जायेगी।

पारिवारिक मूल्यों से सम्बन्धित कोर्स की आवश्यकता

जब शिशु जन्म लेता है तो पहले दिन से ही, बल्कि पहले क्षण से ही वह एक परिवार का सदस्य हो जाता है। जिनसे उनका जन्म हुआ, वे उसके माता-पिता कहलाते हैं। माता-पिता के भाई-बहन क्रमशः उसके मामा-मासी, चाचा-चाची हो जाते हैं और इस प्रकार अन्य-अन्य सम्बन्धियों और रिश्तेदारों की एक श्रृंखला-सी बन जाती है। इन सब निकट सम्बन्धियों को मिलाकर उसका 'कुटुम्ब' या 'परिवार' बनता है।

अन्य किसी सभा या संस्था का सदस्य बनने के लिये तो मनुष्य को प्रायः कोई फार्म भरना पड़ता है, कोई फीस जमा करानी पड़ती है, चन्दा देना पड़ता है या कहीं अंगूठा लगाना या हस्ताक्षर करने पड़ते हैं परन्तु एक परिवार का सदस्य तो नवजात शिशु पहला सांस लेते ही हो जाता है। इस परिवार की अपनी कोई रीति-नीति, मर्यादा-संस्कृति और बीती-प्रीति होती है और इसके अपने रस्म-रिवाज़ भी होते हैं।

परिवार की सदस्यता ज़रूरी

ये परिवार और इसकी सदस्यता ज़रूरी है क्योंकि पहले दिन से ही बच्चे का लालन-पालन, उसका भरण-पोषण, उसकी रक्षा और बाद में शिक्षा, प्रचलित मर्यादा के अनुसार उस परिवार ही की जिम्मेवारी हो जाती है। परिवार के सदस्यों से उसे प्यार मिलता है और उनसे उसका लेना-देना भी शुरू हो जाता है। नये कर्मों का एक वही खाता चालू हो जाता है और लेन-देन, उधार-सुधार सब चलता रहता है। ये प्यार-दुलार उस शिशु को सुख देने वाले भासित होते हैं।

परिवार समाज की इकाई

इस प्रकार से बड़ा होते-होते वह स्वतः ही परिवारों का सदस्य बना होता है क्योंकि उसके परिवार के हरेक सदस्य का अन्य भी किसी-न-किसी परिवार से रिश्ता-नाता होता है। उदाहरण के रूप में उसकी माता के अपने भी माता-पिता होते हैं। जिनके अपने भी भाई-बहन, चाचा, मामा इत्यादि होते हैं। ऐसे ही उसके अपने पिता के अपने भी माता-पिता और उनके सम्बन्धी होते हैं। इस प्रकार थोड़ा ही बड़ा होने पर वह समझता है कि वह एक परिवार का ही नहीं बल्कि गाँव, नगर, जाति, समाज इत्यादि का भी सदस्य है। इस प्रकार परिवार तो वास्तव में समाज की इकाई है।

जैसे परिवार वैसा समाज

इससे स्पष्ट है कि किसी देश अथवा समाज में जैसे परिवारों की हालत होगी वैसे ही उस देश अथवा समाज की भी हालत होगी क्योंकि समाज का ताना-बाना तो परिवार ही हैं। अगर वहाँ के परिवारों के सदस्य सुसभ्य (Civilized), सुसंस्कृत (Cultured), शिक्षित (Educated) अथवा स्व-अनुशासित (Self-disciplined) होंगे तो वह देश भी एक अच्छी सभ्यता वाला देश कहलाएगा। ऊंची सभ्यता एवं संस्कृति, शिक्षा वाले देश के लोग एक जुट होकर एक बड़े परिवार के सदस्य की तरह रहते होंगे। उन सभ्यता वाले देश के लोगों में वैर-वैमनस्य नहीं होगा

और हर थोड़े समय के बाद दंगे, फसाद, लड़ाई-झगड़े, मार-काट और परस्पर शत्रुता की बातें वहां नहीं होंगी। इसकी बजाए अगर किसी परिवार के सदस्य में हर दिन कलह-कलेष, डांट-डपट, अन-बन और परस्पर फूट होगी तो वे जहाँ जायेंगे कलह-कलेष और लड़ाई-झगड़ा पैदा करेंगे। अगर घर-परिवार में मानसिक तनाव होगा तो उसके सदस्य भी हर जगह तनाव अपने साथ ले कर जायेंगे और दूसरी जगह के वातावरण में भी मन, वाणी या कर्म से तनाव फैलायेंगे। अगर उनके घर में झगड़ों को निपटाने के लिये या बीच-बचाव करने के लिये पक्षपात-रहित किसी व्यक्ति की जरूरत पड़ती रहेगी तो वे बाहर वालों से भी मुकद्दमाबाजी लिया करेंगे और न्यायालय के न्यायाधीश महोदय से पारस्परिक झगड़ों में निर्णय कराया करेंगे। वह घर, 'घर' न होकर चिड़ियाखाने से भी गया गुजरा हो जायेगा क्योंकि चिड़ियाघर में भी परस्पर वैर-वैमनस्य वाले जीव-प्राणी अपने-अपने अहाते (area) अथवा पिंजरे में तो अपनी-अपनी मर्यादा से रहेंगे। परन्तु ऐसे घर में तो वे हाय-हल्ला, चीख़-बछाड़ (crying shunting) करते होंगे। जेल में भी कैदी अपने-अपने कमरे में तो रहते हैं परन्तु ये घर तो सीखचों के बिना भी जेल से बदतर होगा क्योंकि यहाँ व्यक्ति एक-दूसरे को दु:ख देते रहेंगे। अपने व्यवहार से पीड़ा पहुंचाते रहेंगे और जीवन भर के सख्त सज़ा (life imprisonment) वाले कैदियों से भी अधिक असह्य (intolerable) वर्ष के बाद वर्ष बिताते रहेंगे। परिवार जो कि वास्तव में सुख और सुरक्षा का साधन होना चाहिये, वह मानो दुर्वासा द्वारा श्रापित दु:खालय बना होगा। जिस परिवार के सम्बन्धों से मनुष्य को आत्मीयता और प्रेम का अनुभव होना चाहिये, उनके वे सम्बन्ध कड़े बंधनों जैसे महसूस होने लगेंगे। आज बहुत-से परिवारों की तो ऐसी ही हालत है। परन्तु, हाँ, अन्य कई परिवार इससे कुछ अच्छे और कुछ उनसे भी अच्छे हैं। परन्तु ये पीड़ाजनक प्रक्रिया शुरू तो हो ही गई है।

वर्तमान समय के परिवार के लक्षण

आज परिवारों में पहले-जैसी आत्मीयता और हार्दिक स्नेह तो किन्हीं-किन्हीं ही परिवारों में देखने को मिलता है। आज बड़े परिवार तो बहुत कम ही रह गये हैं। प्राय: एक-दो पीढ़ी के बाद ही प्राय: बच्चे मां-बाप से अलग हो जाते हैं और एक-दूसरे के दु:ख-सुख में सहृदयता से भागीदार नहीं बनते, न ही वे घनिष्टता से मिलते हैं। **ऊपरी-ऊपरी प्यार** है जो दिखावे जैसा रह गया है। ***स्वार्थ*** बढ़ता जा रहा है। ***अलगाववाद*** पनप रहा है। परिवार ***ढहते*** और ***टूटते*** जा रहे हैं। कई बच्चे घर को छोड़ कर भाग जाते हैं। अन्य बहुत से बच्चे घरों में रहते हुए भी माता-पिता के अधिकारों की अथवा उनकी छत्र-छाया की अवहेलना करते हैं और मनचाहे, उल्टे-पुल्टे कर्मों में लगे रहते हैं। स्वयं माता-पिता भी बच्चों को अपने प्यार से अच्छी तरह से नहीं सींचते इसलिये बच्चे घर से बाहर प्यार ढूढते हैं और झूठे नाते जोड़ लेते हैं। वे द्रव्यपान, मद्य-पान, जैसी आदतों में पड़ जाते हैं। इस प्रकार घर-परिवार और चित्र-चरित्र, ही बदल गये हैं।

घर के सदस्यों में अब परस्पर बात करने का समय ही कहाँ है? घर का दरवाज़ा खुले बिना टी.वी. के दृश्य घरवालों के सामने उपस्थित होते हैं। मां-बेटी, बेटा-बहू, पोता-पोती, नौकर-अतिथि सब इकट्ठे बैठ कर हिंसा तथा पाश्विक कर्म-व्यवहार वाले 'चलचित्र और चरित्र' देखते

हैं। सबने अपने मन के दरवाजे और नेत्रों की खिड़कियाँ ऐसे दृश्यों के लिये खोल दिये हैं। जिन के बारे में 50 वर्ष पहले किसी ने सोचा भी नहीं होगा कि घर 'सिनेमाघरों' से भी अधिक ख़राब स्थान बन जायेंगे। ''बुरा मत सुनो, बुरा मत देखो, बुरा मत बोलो, बुरा मत सोचो'' वाली शिक्षा को एक मोटी सन्दूक में बन्द करके उसे ताला लगाकर जमीन से कई फुट नीचे गाड़ दिया है। जिन बातों को अपनी सास के सामने करने में बहू पहले लज्जा किया करती थी, आज वे इकट्ठी बैठकर उनसे भी सौ-गुणा अधिक गन्दी बातों को देखती और सुनती हैं और हंसी तथा कहकहे लगाते हुए खुश होते हैं। फिर भी लोग इसको 'मनोरंजन' कहते हैं। अगर सन्त कबीर जिन्दा होते तो अपने दोहे में इस प्रकार फेर-बदल करते कि ''भंजन को रंजन कहें, देख कबीरा रोया''।

'घर' अब सराय-जैसे ही बन गये हैं

आज घर वास्तव में घर नहीं रहे बल्कि एक सराय के समान बन गये हैं। जहाँ हरेक सदस्य अपने-अपने अलग समय पर आता है और अलग-अलग खा-पीकर सो जाता है। इसलिये कहा गया है कि आज घर में इतना बदलाव आ गया है कि **अपनापन** महसूस नहीं होता। अंग्रेजी भाषा में **'घर'** के लिये एक शब्द **`Home'** और दूसरा `House' है। पहले और दूसरे शब्द में अन्तर यह है कि पहले (Home) में ऐसा महसूस होता है कि हम ऐसी जगह आ गये हैं जहाँ स्वजन (अपने ही मित्र) हैं और दूसरे (House) में ऐसा लगता है कि रहने की जगह तो मिलेगी, भोजन भी मिलेगा परन्तु अपनेपन वाला एक हार्दिक प्यार नहीं मिलेगा। आज देश की सरकार के एक मंत्रालय को 'गृह-मंत्रालय' (Ministry of Home Affiars) कहा जाता है। जिसका कार्य देश की आन्तरिक सुरक्षा इत्यादि है। परन्तु व्यक्ति अपने रहने के लिये जो घर बनाता है, उससे सम्बन्धित जो कर (tax) लिया जाता है, उसे नगर-निगम वाले `House-Tax' (गृह-कर) कहते हैं। इस प्रकार सरकार ने ही आज 'होम' (Home) और 'हाऊस' (House) के अन्तर को मिटा दिया है क्योंकि अब होम न रहकर हाऊस ही रह गये हैं। विचित्र बात तो यह है कि स्कूल और कालेज के छात्र-छात्राओं के रहने की जहाँ व्यवस्था हो उसे तो Boarding House (छात्रावास) कहा जाता है और जहाँ पर रोगी के ठहरने का प्रबन्ध हो और उसका औषधि-उपचार हो उसे Nursing Home कहा जाता है। परन्तु देखा जाये तो सभी अतिथि-निवास (Guest House) की तरह ही बन गये हैं और धीरे-धीरे जीवन ऐसा ही रूप लेता जा रहा है।

परिवार के सदस्यों की नाव मंजिल की ओर

वास्तव में पहले घर-परिवार में रहने वाले सदस्यों का एक ऐसे जीवन-यात्रियों की तरह जोड़-जुड़ाव था जैसे कि किसी नाव में बैठे हुए यात्रियों का होता है जिन्होंने कि नाव में थोड़ी लम्बी यात्रा करनी हो। घर-परिवार के सदस्यों का इस यात्रा में परस्पर एक ऐसा मेल होने की आशा की जाती है जो मिल कर इस पार से उस पार जायें और रास्ते में इकट्ठे हंसते गीत-गाते, खुशियाँ मनाते, समय को व्यतीत करते हैं। परन्तु आज तो ये नाव भी हिलौरें और झकझोरे ले रही है और यात्री भी नाव में आनन्द लेने की बजाए लड़-झगड़ रहे हैं मानो कि अपनी मंज़िल और अपने साहिल को भी भूल बैठे हैं।

पारिवारिक जीवन में सुख-शान्ति के लिये जीवन जीने की कला

इन सभी बातों को देखते हुए स्पष्ट है कि आज व्यक्तियों को ऐसी शिक्षा भी मिलने की ज़रूरत है कि जिससे उनका पारिवारिक जीवन सुखी हो। आज परिवार में विज्ञान द्वारा उपलब्ध सुविधाएँ तो पहले से कई गुणा ज्यादा हैं और सुख की सामग्री भी प्रचुर-मात्रा में है परन्तु मन में सुख नहीं है। लोग अपने जीवन से सन्तुष्ट नहीं हैं। खुशी उनके जीवन से गायब है। लोगों के पास धन-धान्य तो है परन्तु उनको आन्तरिक प्राप्ति नहीं है क्योंकि सुख धन से मिलने वाली चीज़ नहीं है, वर्ना पैसे वालों को मन का सुख भी ज्यादा होता। जबकि वास्तविकता ये है कि वे नशीले पदार्थों का सेवन करके ही चिन्ताओं और ग़लतियों को भूलने की कोशिश में लगे रहते हैं। आज स्कूलों, कालेजों और विश्व-विद्यालयों की संख्या पहले से बहुत अधिक है और साक्षर लोगों की गणना भी पहले से काफी प्रतिशत बढ़ गई है परन्तु उन विद्या-संस्थानों में भी प्राय: ऐसी शिक्षा नहीं दी जाती जिससे व्यक्ति का घर-परिवार सुखी हो। वहाँ और कलाएँ तो सिखाई जाती हैं परन्तु जीवन जीने की कला नहीं सिखाई जाती। अत: इसके लिये अब विशेष विद्यालयों की आवश्यकता है जो इस कमी को पूरा कर सकें और घर-घर को नरक से स्वर्ग बनायें।

पारिवारिक जीवन जीने की कला कौन सिखा सकता है?

निश्चय ही ऐसी शिक्षा वे दे सकेंगे जो प्रवृत्ति (Work-culture) अथवा कर्मठता (action-in-life) को मानने वाले हों। यदि कुछ लोग ऐसा मानते होंगे कि ''ये संसार ही स्वप्न मात्र है, ये बना ही नहीं है, यह सदा ही दु:खों का घर तो बना ही रहता है'' तब वे तो निवृत्ति मार्ग के होने के कारण घर-बार को झंझट मानकर, इसे छोड़-छाड़ कर ही चले जायेंगे। वे जंगल में जाकर अपना अलग मकान अथवा अपनी अलग कुटिया बनायेंगे। आख़िर वे अपने चेलों और शिष्यों का एक परिवार बना लेंगे। अत: घर-परिवार को तो छोड़ जाने के बाद भी वे किसी-न-किसी अन्य रूप में घर-परिवार तो बनायेंगे ही, क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और परिवार समाज की इकाई है, तब परिवार तो चाहिये ही और परिवार के लिये घर भी चाहिये ही। अत: इससे छूट नहीं सकते क्योंकि जीवन-यात्रा के लिये यह जरूरी है। हाँ, वर्तमान समय परिवार, परिवार नहीं है–ये उसका विकृत रूप है। अब इसे बदलना ही है। इसे बदलने के लिये वे ही शिक्षा दे सकेंगे जो परिवार और पारिवारिक जीवन के महत्व को मानते हों अर्थात् प्रवृत्ति को दिव्य बनाना चाहते हों। वे घर-बार को छोड़ने की सलाह नहीं देंगे, बल्कि बुराइयों को छोड़ने की सम्मति देंगे। वे घर-बार से कलह-कलेष और मनोविकारों को निकालने की राय देंगे। वे बुरी आदतों को छोड़ने और भलाई अथवा दिव्य गुणों को अपनाने के विधि-विधान का पाठ पढ़ायेंगे।

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व-विद्यालय द्वारा इसकी शिक्षा

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व-विद्यालय आज समाज की यही श्रेष्ठ सेवा कर रहा है। यह विश्व-विद्यालय ऐसे पाठ्यक्रम के द्वारा यह शिक्षा देता है कि– घर में रहते हुए मनुष्य का व्यवहार सुन्दर कैसे बने और व्यक्ति स्वयं महान कैसे हो। वह मनुष्यता के दर्जे से ऊंचा उठते-उठते देवत्व को कैसे प्राप्त करें? उसका जीवन अपवित्र से पवित्र कैसे हो? वह घर-परिवार में

रहते हुए मन-वचन-कर्म से निर्विकार कैसे बने? निवृत्ति मार्ग वाले तो इसे असम्भव मानते हैं परन्तु यह ईश्वरीय विश्व-विद्यालय इसे संभव मानता है।

घर-परिवार दिव्य गुणों के लिये एक प्रयोगशाला

ये ईश्वरीय विश्व-विद्यालय मानता है कि घर-परिवार तो एक प्रयोगशाला है। यहाँ पर व्यक्ति अपनी जीवन में अच्छाई के प्रयोग (experiments) करता है। वह जिनके सम्बन्ध में रहता है या जिनके साथ कारोबार या व्यवहार करता है, उनके द्वारा प्रलोभन, उत्तेजनाएं, उकसाहट, फुसलाकर, तनाव, लगाव, इत्यादि की परिस्थितियाँ तो पैदा होंगी ही परन्तु यहाँ उसे ईश्वरीय विद्या पढ़ाई जाती है जिसके आधार पर वह सांसारिक काम करता है। जीवन में योग-साधना भी करे, दिव्य गुण भी धारण करे और इन परीक्षाओं को भी पार करे। यदि घर-बार ही छोड़ दिया जाये, तब तो फिर ये परीक्षायें और परिस्थितियाँ तो होंगी ही नहीं। तब इस विद्या का अध्ययन और अभ्यास करने वाले को पता कैसे चलेगा कि अपने आचरण में उन शिक्षाओं को कहाँ तक लाया है।

कर्मों का लेखा-जोखा

दूसरी बात यह है कि किसी परिवार में जन्म लेने के पीछे रहस्य ही ये समाया हुआ है कि जिस परिवार का वह सदस्य बना है, उन सदस्यों के साथ उसके पिछले कर्मों का कोई लेखा-जोखा है। अब उन्हें चुकता किये बिना वह यदि छोड़ कर भागना भी चाहे तो भाग कर कहाँ जायेगा? वह अपने कर्म-बन्धनों को या तो योग-बल द्वारा समाप्त कर सकता है या उनका फल भोग कर। अगर वह इन दोनों विधियों को उलांघ कर कहीं दूसरे स्थान पर भाग भी जायेगा, भगवे कपड़े पहन कर सन्यास भी कर लेगा, नाम भी बदल लेगा और दूर-दराज़ कहीं छिप कर, जटा-जूट धारण कर के, वेष-देश बदल कर कहीं रहेगा भी तब भी उसके संचित अथवा प्रारब्ध कर्म तो उसका पीछा छोड़ेंगे नहीं। वह कर्म किसी-न-किसी विधि से, किसी-न-किसी रूप में तो उसको दबोचेगा ही। अत: ये तो कर्म-सिद्धान्त से अनभिज्ञ लोग ही ऐसा कर सकते हैं कि कर्म-क्षेत्र अथवा मैदान को छोड़ कर भाग खड़े हों। कबूतर बिल्ली को आते देख कर आंखें मूंद लेता है और मन में यह सोच लेता है कि बिल्ली आ ही नहीं रही अथवा देख ही नहीं रही। परन्तु जब वह निकट आकर झपट्टा मारकर उसकी गर्दन पकड़ लेती है तब तो देर हो चुकी होती है।

कर्मों को छोड़ना नहीं, श्रेष्ठ बनाना है और योगाग्नि द्वारा विकर्म दग्ध करने हैं

अत: व्यक्ति को यह चाहिये कि वो संसार में रहते हुए ही इससे न्यारा हो जाए और ज्ञान-योग के पंख लगा कर खुशी में आजाद पंछी की तरह आध्यात्म के गगन में उड़ता रहे। इस प्रकार ये ईश्वरीय विश्व-विद्यालय तो सहज योग विद्या सिखा कर किये हुए विकर्मों को दग्ध करने की विधि का अभ्यास कराता है। ये कर्मों को श्रेष्ठ बनाने की कला सिखाता है। कार्य-व्यवहार छोड़ने की बजाए, कर्म में कुशलता लाने का उपाय सिखाता है।

पारिवारिक जीवन जीने की कला की शिक्षा विशेषत: माताओं द्वारा

परिवार में माता का स्थान विशेष होता है। माता को पहला गुरु कहा गया है। बच्चा अपने प्रारम्भिक संस्कार उससे लेता है। प्यार, सेवा और व्यवहार के माध्यम से वह ही बच्चे को प्रारम्भिक पाठ पढ़ाती है। उसकी छाप बच्चे के मन में बड़ा होने पर भी आयु-पर्यन्त लगी रहती है। वह उसका एहसान नहीं भुला सकता और उसकी बात को टालना भी उसके लिये मुश्किल होता है क्योंकि वह अनुभव से जानता है कि वह उसका हित ही चाहती है। अत: यदि माता घर में बच्चों में प्रारम्भ ही से अच्छे संस्कारों का बीजारोपण करे तो उसका अच्छा फल निकल सकता है। परन्तु आज माताओं का भी वह रूप नहीं रहा उनके अपने जीवन से भी नैतिक मूल्य काफ़ी हद तक मिट चुके हैं और दिव्य गुणों का ह्रास हो गया है। भौतिक वाद और विलासिता वाली पाश्चात्य सभ्यता ने भारत की थोड़ा-बहुत तो नारी को भी भोग-विलास की ओर आकर्षित किया ही है। भारत की नारी का पहले जो गौरव था, आज वह मन्द और धूमिल होता जा रहा है। भारत की नारी विश्व-वन्दनीया थी परन्तु आज तो फैशन-शो (Fashion show), माडल, अश्लील हाव-भाव का दौर-दौरा है और दुल्हन-दहन, अपहरण, इत्यादि की कितनी वारदातें होती हैं और तलाक और ताड़ने-मारने के किस्से सुनने में आते हैं। अत: आज भारत की नारी में पुन: आत्मिक शक्ति का संचार करने की ज़रूत है ताकि वह शक्ति रूपा और दैवी रूपा बन कर घर को देव स्थान बना सके। कहा गया है कि नारी घर की धूरी है और एक नारी के शिक्षित होने से घर-परिवार शिक्षित होता है। इसलिये एक तो यह ईश्वरीय विश्व-विद्यालय गृहणियों को या वर्किंग महिलाओं को ऐसा कोर्स कराता है ताकि वे स्वयं जाग्रत होकर घर-परिवार में जागृति लाये। दूसरे, इस ईश्वरीय विश्व-विद्यालय ने जो कोर्स तैयार किया है उसकी शिक्षा देने का कार्य भी पवित्र कन्याओं-माताओं को ही सौंपा गया है। क्योंकि इस कार्य में मां सरस्वती के समान वे ही अधिक कुशल हैं।

यह कार्य वे लोग नहीं कर सकते जो नारी को नरक का द्वार कहते हैं अथवा उसे ताड़न का अधिकारी या निम्न-वर्ग का मानते हैं। ये कार्य वो विश्व-विद्यालय कर सकता है जो ये मानता हो कि माताओं द्वारा ही देश महान् बन सकता है कि जिसमें फिर से देवी-देवताओं का निवास हो। देखा गया है कि माताओं में नम्रता, त्याग, सेवा-भाव, धर्म-धारणा की भावना इत्यादि गुण जो कि इस विद्या को देने के लिये सहायक है, प्राय: अधिक होते हैं। अत: उन ज्ञान-गंगाओं को ही पतित-पावनी बनकर यह कार्य करने का श्रेय दिया गया है।

माता केवल बच्चों की ही गुरु नहीं होती बल्कि मां का प्रभाव सारे कुटुम्ब-परिवार पर होता है। वह घर की रक्षियत्री देवी है। वह ही चरित्र को संवारने-सुधारने और मर्यादा को कायम रखने के निमित्त है। आज भी लोग माताओं की उपस्थिति में मर्यादाहीन किसी कार्य को करने में झेंपते हैं क्योंकि उनका नैतिक स्तर ऊंचा है। इसलिये जब कन्याएं-माताएं ये कोर्स अन्य महिलाओं को करायेंगी तो उनके घर में सुख-शान्ति आएगी।

इस कोर्स के लिये निमन्त्रण

सभी लोगों को चाहिये कि वे अपने घर-परिवार की महिलाओं को ऐसा प्रोत्साहित करें कि

वे इस कोर्स को करें। विशेष-रूप से महिला संस्था वालों से नम्र निवेदन है कि वे अपने सदस्याओं को ऐसी प्रेरणा दें कि वे ये कोर्स करें। इसके बाद हमारी ऐसी भी योजना है कि बाद में भी और-और कोर्स कराये जाये करें। ताकि उनको इस कोर्स की गहराइयों का पता लगे।

इस कोर्स से लाभ

इस कोर्स से बहुत-से लाभ होंगे। सबसे पहली बात तो यह है कि (1) इस कोर्स से तनाव मिटेगा। आज लोग बहुत फज़ूल-खर्ची करते हैं। निरर्थक रस्म-रिवाज़ और दिखावे पर भी काफी पैसे का अपव्यय होता है। जबकि देश में करोड़ों व्यक्तियों को दिन में दो बार भोजन भी प्राप्त नहीं होता। (2) इस कोर्स से लोगों के जीवन में सादगी आएगी और फज़ूल-खर्ची का अन्त होगा। सादगी अपने साथ (3) **सन्तुष्टता** लायेगी और दोनों से (4) जीवन में **खुशी** बढ़ेगी। (5) न भ्रष्टाचार के द्वारा पैसा कमाने की ज़रूरत रहेगी, (6) न व्यर्थ में भय और चिन्ता के द्वारा कई रोगों का शिकार होना पड़ेगा। (7) इस प्रकार, पैसा बचेगा और जीवन स्तर ऊंचा हो जायेगा और (8) मांगने तथा धन की कमी का राग अलापने की बजाय व्यक्ति के जीवन में सदा **तृप्ति** की झलक दिखाई देगी और (9) घर में बरकत देखने में आयेगी। (10) तनाव मिटने से स्वास्थ्य का लाभ तो होगा ही, (11) हर आए दिन डाक्टरों के पास चेकिंग और दवाई लेने जाने की बजाए स्वास्थ्य का सुख-लाभ तो होगा ही, साथ-साथ (12) बीड़ी-सिगरेट, शराब, मादक द्रव्यों का सेवन रूपी व्यसनों से भी मुक्ति मिलेगी। सिगरेट, व्यसन ऐसे पीछा छोड़ जायेंगे जैसे कोई पूराना स्वप्न भूल गया हो। (13) न घर-परिवार में झगड़ा होगा न किसी से अनबन होगी। (14) सभी से सम्बन्धों में मधुरता, स्नेह और सम्मान देखने में आयेगी। (15) सबसे मैत्री-भाव होगा। (16) लोगों के मन में उज्ज्वल छवि होगी और (17) वे बातचीत करना पसन्द करेंगे। (18) जीवन में मन-वचन-कर्म पर ध्यान रहेगा और (19) नकारात्मक चिन्तन (Negative Thinking), (20) कटुवचन, (21) अभद्र-व्यवहार (22) अमर्यादित-आचार, इत्यादि समाप्त होते जायेंगे और ऐसा महसूस होगा कि हम पवित्रता और महानता की सीढ़ी पर ऊंचे चढ़ते जा रहे हैं और प्रभु की कृपा तथा लोगों के आर्शिवाद के पात्र बनते जा रहे हैं।

इस सत्र के लिए कुछ मुख्य प्रश्न

1. सार-संक्षेप में हमें 10 ऐसी बातें बताइये जो कि परिवार की वर्तमान दशा के मूल अथवा मुख्य कारण हैं। उन्हें आप लिखें ताकि आपके और दूसरी कुछेक बहनों के द्वारा लिखे कारणों का तुलनात्मक अध्ययन हो सके।
2. क्या परिवार को सुधारना ही उपाय है या अपनी उन्नति के लिए परिवार को छोड़ कर केवल साधना करना ही श्रेयस्कर है? इस विषय में आपका जो भी मन्तव्य हो उसके लिए कारण बतायें।
3. क्या निवृत्ति मार्ग अथवा सन्यास धर्म को मानने वालों का ये नैतिक अधिकार है कि वे परिवार को ठीक करने की शिक्षा दें या केवल प्रवृत्ति मार्ग वाले, पवित्रता द्वारा महान बनने वाले ही पारिवारिक मूल्यों की स्थापना का कार्य कर सकते हैं? अपने उत्तर की पुष्टि में कारण बतायें।
4. महिलाओं में ऐसी क्या विशेषता है जिसके कारण वे ये कोर्स कराने में बेहतर मानी जाये?
5. आप इस कोर्स द्वारा घर-परिवार में किस परिवर्तन की आशा रखते हैं और कितने प्रतिशत?

घर-परिवार की कुछ समस्याएं और उनके मूल कारण

पिछले पाठ में हमने बताया था कि पारिवरिक मूल्यों से सम्बन्धित जो पाठ्यक्रम हम प्रारम्भ करने जा रहे हैं, उसका मूल उद्देश्य है–

पारिवारिक जीवन को पावन एवं सुख-शान्तिमय बनाना ताकि घर-परिवार में सुख-शान्ति होने से एक सुख-शान्तिमय समाज का निर्माण हो। उस प्रसंग में हमने वर्तमान परिवार की दु:ख नामक व्याधि के कुछ लक्षण अथवा चिह्न (symptoms) बताये थे।

उदाहरण के तौर से हमने बताया था कि (1) परिवरा टूटते जा रहे हैं। (2) युवा-वर्ग घर-परिवार से बाहर प्रेम ढूंढते हैं और, इस तलाश में, (3) या तो वे मादक-द्रव्य सेवन करने लग जाते हैं या (4) सिनेमा हाल में या बुरी सोहवत में समय व्यतीत करते हैं। (5) कई तो ब्रह्मचर्य आश्रम की मर्यादाएं भी तोड़ देते हैं। ऐसे रही कुछ अन्य लक्षणों की ओर भी हमने इशारा किया था जिनमें से एक बात यह भी बताई थी कि (6) विवाह होने पर जब वधु घर में आती है तब थोड़े-ही दिनों मे दहेज या पैसे की लेन-देन को लेकर कहा-सुनी या दुल्हन-दहन तक की वारदातें हो जाती हैं (7) या किन्हीं अन्य कारणों से सास-बहू एवं जेठानी-देवरानी के झगड़े होते रहते हैं। उस प्रवेशिका (Introductory Lesson) में हमने ये नहीं बताया था कि परिवारों में इन विघटनों या विघ्नों के या दु:ख-नामक व्याधियों के मूल कारण क्या हैं। अत: इस पाठ में हम कुछेक कारणों की चर्चा करना चाहते हैं क्योंकि कारणों को ध्यान में रखने से ही फिर अगले पाठों में उनके निवारण के विषय में भी बात हो सकेगी।

1. दिनचर्या ही ठीक नहीं

पारिवारिक जीवन में सबसे पहली बात तो यह होनी चाहिए कि उनके सदस्यों की दिनचर्या ऐसी हो कि जिसमें सभी की सुख-सुविधा बनी रहे। सोने के समय सब चैन की नींद सो सकें और दिन-भर भी ऐसा महसूस हो कि घरवाले शान्तिपूर्वक बैठे या कार्य कर रहे हैं। दिनचर्या ऐसी हो कि प्रतिदन हो-हल्ला, जल्दीबाज़ी या भाग-दौड़ न लगी हो बल्कि ऐसा लगे कि दिनचर्या और व्यवस्था सुचारु रूप से चल रहे हैं। अगर कोई व्यक्ति आधी रात गये 12-1 बजे तक टी.वी. देखता रहे या रेडियो सुनता रहे जिसमें कि दूसरों को भी, या तो उसके कारण से जागते रहना पड़े और या वे सोना चाहते हुए भी वे न सो सकें तब आख़िर कब तक ऐसे गुजारा होगा? किसी ने कहा है कि ''काम के समय काम और आराम के वक्त आराम'' होना चाहिए (Work while you work, play while play; this is the best way, the wise man says) यह भी कहा गया है कि ''सुबह को जल्दी उठना, रात को सोना शताब (जल्दी); सेहत वा दौलत बढ़ावे, अक्ल को दे आबो-ताब'' (Early to bed and early to rise; makes a man healthy, wealthy and wise)। परन्तु बहुत-से लोग तो ऐसे होते हैं कि उन्होंने न तो कभी प्रात: सूर्य के उदयकाल के सुन्दर सुनहरी दृश्य को देखा होता है और न ही अमृतवेले का 'अमृत' रसपान किया होता है।

इस प्रकार, वे जीवन की कई प्रकार की अनुपम देन से वंचित रह जाते हैं। फिर देर से सोने वाले व्यक्ति प्रात: जब देर से उठते हैं, तब या तो उनका नाश्ता ठण्डा हो चुका होता है और या नाश्ता बनाने वाले उनकी रोज की इस बेसमझ नींद से बेहाल हो चुके होते हैं। अत: जिनके दिन का प्रारम्भ ही ठीक नहीं होता न दिन का अन्त ठीक तरह होता है; उनकी जीवन-पद्धति भी ठीक नहीं होती फिर, रात को सोने से पहले व्यक्ति जो दृश्य देख कर अथवा खबरें सुन कर सोते हैं, वे चित्र भी उनकी दिमाग़ी दुनिया में चक्कर लगाते रहते हैं। जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने कभी सात्विक सुख वाली नींद नहीं की होती। इसलिए पहले तो दिनचर्या ही को ठीक करना ज़रूरी है ताकि हमारे जागने और सोने, और बीच में कार्य करने की अवधि है, उसका मेल हमारी शारीरिक घड़ी (Bio-clock) से और कुदरती वातावरण (Environment) से तथा उसका अन्य सदस्यों की दिनचर्या से तालमेल न होने से परिवार के सदस्यों में परस्पर मन-मुटाव, कहा-सुनी और चिड़चिड़ापन होता है। देर से सोने और उठने वाले सदस्य जल्दी सोने और उठने वालों से असन्तुष्ट होते हैं और उनसे परेशानी (disturbance) महसूस करते हैं और जल्दी सोने और उठने वाले सदस्य घर में प्रात: आलस्य और निद्रा के वातावरण को देख कर एतराज़ करते हैं।

2. वातावरण का ठीक न होना

परिवार की सुख-शान्ति का एक महत्त्वपूर्ण कारक (factor) होता है– स्नेहमय और शान्त वातावरण का होना। इसी तरह पारिवारिक अशान्ति का एक मुख्य कारण होता है– वातवरण में कलह-कलेष, डाँट-डपट, कर्कश-ध्वनि और स्नेह का अभाव। वातावरण के अशान्त होने के कारण ही सदस्यों को घर नरकमय लगता है और उनमें से कुछ सदस्य परिवार को छोड़ कर कहीं और रहना चाहते हैं और इसी से ही परिवार टूटते हैं।

वातावरण में अशान्ति के कई कारण होते हैं। उनमें से मुख्य हैं– (1) विचारों और संस्कारों का टकराव, (2) स्वार्थ, (3) ईर्ष्या और उसके कारण द्वेष, (4) अपनी ही बात मनवाने या जिद्द और ठीक सिद्ध करने की आदत, (5) पक्षपात और अन्याय, (6) आत्मीयता अथवा स्नेह का अभाव, (7) परस्पर सन्मान देने का या आदरभाव का अभाव, (8) परस्पर सहयोग की कमी, इत्यादि।

आज मुख्यत: इन्हीं के कारण या तो वातावरण में तनाव है, या कुछ हंसी-विनोद एवं नवीनता न होने के कारण वातावरण बोरिंग (boring) है, अर्थात् ऐसा है कि मन ऊब जाता है या इतना औपचारिक (formal) है कि उसमें मन को भारीपन महसूस होता है। कई बार ऐसा भी होता है कि कुछेक व्यक्ति तेज़ स्वभाव के होते हैं जो कि जल्दी ही किसी बात से भड़क जाते हैं। उससे भी स्वभावों का टकराव होता है और वातावरण बिगड़ जाता है।

3. प्रभुत्व जमाने, अपनी बात मनवाने, संकीर्णता, जिद्द और सिद्ध करने की आदतें तथा समायोजन (Adjustment) का अभाव

वातावरण बिगडने के कई कारण होते हैं। इनमें से एक कारण है– अनुरूपता (adjustment) का अभाव। जब कुछ लोग इकट्ठे रहते हैं तो उनकी आवश्यकताएं अलग-अलग होती

हैं और इच्छाएं भी भिन्न-भिन्न होती हैं तथा पसन्द भी अपनी-अपनी होती हैं। विचार भी कभी एक-दूसरे के अनुकूल और कभी प्रतिकूल होते हैं। परन्तु जब हमारा लक्ष्य ही इकट्ठे हो कर, मिल-जुल कर रहना है तो फिर इसमें अनुरूपता लाना, समीप आना ज़रूरी हो जाता है। अगर एक व्यक्ति (1) अपना ***प्रभुत्व*** (domination) ***जमाने की कोशिश*** करे या सदा हठ कर के (2) अपनी इच्छा मनवाने या (3) ***अपनी ही पसन्द*** को जोर-जबरदस्ती दूसरों को मनवाने का पुरुषार्थ करे और हर आये दिन थोपने लगे तब इससे पारस्परिक सम्बन्धों में भारी-पन आ जाता है और एक दिन यह बात असह्य हो जाती है। इसलिए पारस्परिक सामंजस्य बिठाना ज़रूरी होता है। तालमेल तभी बना रहता है जब किसी एक की बात, कभी किसी दूसरे की बात जिसकी भी ठीक हो, सब लोग उसे मान लेते हों। अपनी पसन्द को (4) *सिद्ध* करने और उसको मनवाने की (5) ज़िद्द करने की बात दो-चार, पाँच या दस बार तो चल जाती है परन्तु दैनिक जीवन में चल नहीं पाती। आज समायोजन न होने के कारण ही परिवार टूटते जा रहे हैं और परिवार के सदस्य मानसिक परेशानी महसूस करते हैं तथा शारीरिक व्याधियों के भी शिकार हो जाते हैं।

4. भ्रान्ति, बहकावे, चुगल, टाँट करने की आदतें तथा धीरज और सहनशीलता की कमी

परिवार में कुछ सदस्य ऐसे भी होते हैं कि जिनका स्वयं पर नियन्त्रण नहीं होता। वे कुछ ऐसी बात कह देते हैं या ऐसे तरीके से कहते हैं या ऐसे समय पर कहते हैं कि वह दूसरों को बहुत अख़रती है। वह उनके मन में चुभ जाती है और वे उसे अपने लिए (क) अपमानजनक, (ख) अनुचित, (ग) असभ्य, (घ) मिथ्या-अनुमान पर आधारित या (ड) अन्याय युक्त मान कर कुछ उत्तेजना महसूस करता है। परन्तु यदि हम ये जानते हैं कि दूसरे व्यक्ति ने जो कुछ कहा है उसने स्वयं ही किसी (1) *भ्रान्ति,* (2) *उत्तेजना* या किसी के (3) *बहकावे* या चुग़ली के कारण कहा है, तो स्थिति शान्त बनी रह सकती है। परन्तु आज कल लोग (4) थोड़ा *धीरज* नहीं करते, (5) *सहन* नही कर पाते। यदि वे ऐसा करें तो स्थिति के थोड़ा शान्त होने पर उस व्यक्ति से बात कर के उसकी भ्रान्ति इत्यादि दूर की जा सकती है तो फिर हालात पर काबू पाया जा सकता है। परन्तु आज प्राय: देखा गया है कि लोग प्राय: (6) *उत्तेजना* में आकर, भड़क कर *जोश* या *आक्रोश* के वश हो कर आग में ईन्धन डालने का कार्य करते हैं। इसका परिणाम उन्हें स्वयं का सारे परिवार को या आने वाली पीढ़ियों को भी भुगतना पड़ता है। आज बच्चे बड़ों के (7) *रोब,* राय या शिक्षा को सुन कर भड़क जाते हैं और बड़े छोटों की चंचलता, उद्दण्डता या बेअदबी को देखकर (8) *गर्जना* कर के बोलते हैं या उन पर बरस पड़ते हैं जिससे घर का माहौल तनावपूर्ण हो जाता है। वे एक-दूसरे को (9) *टाँट* (taunt) कसते हैं और *तुनका* या ठूंगा लगाते हैं। पति-पत्नी में नोंक-झोंक होती है, भाई-बहन एक-दूसरे से लड़ पड़ते हैं उसमें फिर घर का एक हिस्सा तो दंगल का मैदान, एक हिस्सा स्टाक मार्किट या मछली मार्किट (Fish Market) बन जाता है। परन्तु इन जगहों पर भी कंधे से कंधा भले ही लगता हो, धक्का-पेल भले ही होती हो और शोरगुल, हल्ला-गुल्ला होता रहता तो भी लोगों में कोई झड़पें नहीं होती। घर में तो खूब झड़प हो जाती है। अत: अब घर के नक्शे को बदलने की ज़रूरत है।

5. सहयोग और सन्मान का अभाव

कुछ परिवारों में कोई-कोई सदस्य अपना कार्य तो दूसरों से करा लेते हैं परन्तु दूसरों के कार्य के समय या उनकी किसी विकट परिस्थिति के समय उन्हें कोई (1) *सहयोग नहीं* देते। ऐसा भी होता है कि (2) कुछेक व्यक्ति दूसरों को *सन्मान* नहीं देते। उनके बात करने में (3) *अखड़पन* होता है। वे 'तू' 'तुम्हारे' का शब्द प्रयोग करते हैं। उनके बात करने के लहज़े और उनकी शब्दावली से ऐसा लगता है कि वे (4) *हर बात में स्वयं को बड़ा वा ठीक* समझते हैं और *दूसरों की अवहेलना* (neglect) करते हैं उनकी (5) *मुनासिब बात को भी उड़ा देते हैं।* (6) वे घटिया किस्म का मज़ाक करते हैं या ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं जिन पर दूसरों को एतराज होता है क्योंकि उन शब्दों से (7) *अपमान* की दुर्गन्ध आती है या उस व्यक्ति का (8) *अभिमान* झलकता है। वे हर बात में चौधरी, नम्बरदार, ठेकेदार, थानेदार या किसी जमाने के डण्डी-छड़ी वाले हेड-मास्टर की तरह से बात करते हैं। इससे दूसरे सदस्य समझते हैं कि इनके बात करने का अर्थ है अपनी दाड़ी या चोटी को इनके हाथ में देना या अपनी इज्ज़त को मिट्टी में मिलवाना। अत: आज के परिवारों की एक बड़ी समस्या है– परस्पर सहयोग और सन्मान का अभाव या कमी।

6. संस्कारों का टकराव

वातावरण में अशान्ति और तनाव का एक कारण होता है– पारस्परिक संस्कारों का टकराव। जैसे हाथ की पाँचों अंगुलियाँ एक जैसी नहीं होती, वैसे ही घर के भी सभी सदस्य एक-जैसे नहीं होते। जिनका आपस में संस्कारों का टकराव हो वे ऐसा महसूस करते हैं कि जैसे ज़िन्दा अग्नि में जल रहे हों या एक-दूसरे के शत्रु बन बदला चुकाने की इन्तज़ार में रहते हों। इस प्रकार उनका जीवन बहुत ही अशान्त हो जाता है अत: सुखी जीवन जीने की कला में यह जानना भी ज़रूरी है कि संस्कारों का मेल कैसे हो?

7. प्रेम और नेम (नियम) में सन्तुलन का न होना

ऐसा देखा गया है कि कई घरों में माता या पिता, दादा या दादी, बच्चे या पोते को इस विधि और इतना प्यार देते हैं कि (1) उन पर से *नियन्त्रण पूरा उठा लेते हैं।* इससे बच्चे *निरंकुश* हो जाते हैं। वे इतने बिगड़ जाते हैं, उछल-कूद करते हैं और ऊधम मचाते हैं कि प्रेम करने वालों के ही सिर में दर्द कर देते हैं। ऐसी अवस्था आ जाती है कि वे किसी की सुनते ही नहीं। अतिथियों के सामने भी उनका व्यवहार ऐसा होता है कि जिससे घर-परिवार की इज्ज़त भी खत्म हो जाती है। (2) अन्य कई माता-पिता, दादा-दादी अथवा बड़े भाई-बहन ऐसे होते हैं कि वे बच्चों को थोड़ी-भी *स्वतन्त्रता नहीं देते।* वे कभी भी उनको ऊंचा हंसना नहीं देख सकते। उनके थोड़े खेल-कूद पर भी वे रोक लगाते हैं। (3) वे उन पर इतनी *सख्ती* करते हैं कि (4) बच्चों के मन में डर बैठ जाता है। उस डर के कारण न बच्चों का विकास होता है, न उन्हें बचपन की खुशी या खेल-कूद का मज़ा मिलता है। वे दबे-दबे से रहते हैं और कई बार तो कई बिमारियों के शिकार हो जाते हैं। जो अधिक प्रेम करते हैं (5) वो नेम (नियम) को एक तरफ उठा कर रख

देते हैं। (6) दूसरे कई नेम की चाबुक हाथ में लिए रहते हैं। इस प्राकर प्रेम ओर नेम (Love & Law) का सन्तुलन न होने से घर-परिवार में कई प्रकार की विकृतियाँ आ जाती हैं और नाराज़गी वा टकराव की वारदातें होती हैं।

8. ग़लतफ़हमी और सुनी-सुनाई बातें

परिवार के कई सदस्य इसलिए भी दु:खी रहते हैं कि वे दूसरों द्वारा कुछ बातें सुन कर अपने ही पारिवार के व्यक्तियों के बारे में कुछ ग़लत धारणाएं (Impressions) बना लेते हैं और (1) उनकी हर गति-विधि को इन्हीं *सुनी-सुनाई बातों के आधार पर बने दृष्टिकोण* को अपना कर देखते हैं। (2) ऐसा भी होता है कि परिवार के किसी सदस्य के *भाव को न समझ कर वे शब्दों को ज्यादा पकड़ लेते हैं* या उनके भाव के विषय में भी *मन-गढ़न्त* बातें सोचते हैं तथा मिथ्या अनुमान लगाते हैं। इस प्रकार, आपस में ग़लतफहमियाँ बढ़ती जाती हैं, (3) सम्बन्धों में गाँठ पर गाँठ लगती जाती है और आगे चल कर कई पेचीदगियाँ पैदा हो जाती हैं।

9. परस्पर वार्तालाप में संकोच (Lock of Communication) और मेल-जोल में कमी

बहुत-सी परेशानियाँ तो इसलिए पैदा होती हैं कि समय के अभाव के कारण, परस्पर संकोच के कारण या अन्य किन्हीं कारणों से (1) सदस्यों की *आपस में सहृदयता से बातचीत ही नहीं होती।* इसलिए (2) एक घर में रहते हुए भी उनका *मानसिक फासला बढ़ता जाता है।* इससे भी घर-परिवार का वातावरण जैसा सुखद होना चाहिए वैसा नहीं होता और (3) व्यक्ति सम्बन्ध होने पर भी स्वयं को अज़नबी महसूस करता है। इससे घर में नीरसता आती है और भ्रान्तियाँ होने की संभावना बनी रहती है। वे एक-दूसरे के निकट नहीं आते, खुशी-खुशी से बात-चीत नहीं करते, मिलते-जुलते कम हैं और दु:ख-सुख के भी भागीदार नहीं बनते।

10. जीवन में व्यसन

घरों के वातावरण ख़राब होने का एक कारण है– किसी-किसी सदस्य के द्वारा (1) नशीले या (2) ज़हरीले *पदार्थों का सेवन* किए जाना। अगर घर में कोई शराब पीता है और (3) नशे में आ कर *ऊल-जुलूल बोलता है,* अनाप-शनाप बातें करता है, दूसरे सदस्यों पर *हाथ उठाता है* तो घरवाले परेशान होते हैं। इसी प्रकार यदि कोई आजकल के नये प्रकार के मादक द्रव्य प्रयोग करता है जिससे अपना (4) *स्वास्थ्य* भी बिगाड़ता है, (5) व्यवसाय भी खराब करता है, अपने मस्तिष्क पर भी बुरा प्रभाव डालता है तब भी घर के अन्य सदस्य दु:खी हो जाते हैं क्योंकि उसके व्यवहार का प्रभाव आने वाले अतिथियों पर भी पड़ता है और जहाँ-तहाँ इसकी चर्चा होती है और (6) परिवार का नाम भी बदनाम होता है। कोई सदस्य सिगरेट पीता है, दूसरा कोई हुक्का तो तीसरा जहाँ-तहाँ पान थूकता रहता है। कोई गांजा पीता है कोई सुल्फ़ा, कोई अफ़ीम खाता है कोई ज़र्दा। परिवार के दूसरे लोगों के लिए ये *मुसीबत है।* वे उस सदस्य को छोड़ना भी मुश्किल समझते हैं उसके साथ रहना भी। (7) किसी में जुए की लत पड़ जाती है, किसी को

सारा दिन ताश खेलना है। इस प्रकार के व्यसन, इल्लतें और बुरी आदतें ही घर के वातावरण को बिगाड़ देती हैं। शराब से खाना (घर) ख़राब होता है और नशीले पदार्थों के प्रभाव से मनुष्य गुलाम बन जाता है, मान गंवा बैठता है।

11. निरर्थक रीति-रिवाज़

कई परिवारों के कुछ लोग (1) अन्ध श्रद्धालु भी होते हैं और (2) कई बनावटी और चरित्रहीन, वेषधारी, साधु-सन्त, इत्यादि के यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र इत्यादि के चक्कर में पड़ कर वहम् में पड़े रहते हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं जो ऐसे लोगों के कहने के आधार पर (3) शोर मचाकर भक्ति-पूजा करते हैं जिससे घरवालों की नींद और आराम हराम हो जाता है और अड़ोसी-पड़ोसी भी परेशान हो जाते हैं। (4) कुछ तो ऐसी रस्म-रिवाज़ों पर ही इतने पैसे खर्च करते हैं कि जो दूसरों को अनुचित महसूस होते हैं।

12. फज़ूल ख़र्ची

कुछ चमक-दमक और फैशन के ऐसे शौकीन होते हैं कि (1) दर्जन-दो दर्जन अलग-अलग डिज़ाईन के जूते, (2) कई प्रकार के चमकीले-भड़कीले और खर्चीले कपड़े, (3) सजावट का समान, खाने-पीने के व्यंजन, (4) दोस्तों की हर दिन महफ़िल, बड़े-बड़े होटलों में पैसे खर्च कर के, (5) अलग-अलग देशों के भिन्न-भिन्न प्रकार के वैभव, भल्ले-पकोड़ी, चाट इत्यादि की दुकानों पर खड़े हो कर, दोस्तों के झुण्ड के साथ फिज़ूल ख़र्ची करने की आदतें लिए हुए होते हैं। इस प्रकार न केवल वे धन को गंवाते हैं बल्कि अपने स्वास्थ्य को भी बिगाड़ बैठते हैं।

13. उचित प्रोत्साहन (Appreciate) देने में कमी

जब कोई बच्चा अच्छे नम्बर ले कर आता है, अच्छा खेल-खेलता है, अच्छा गीत गाता है या और कोई ऐसा कार्य करता है जो कि सफलता, कलात्मकता या विशेषता का सूचक है तो वह यह आशा रखता है कि उसके साथी, सम्बन्धी, मित्र इत्यादि कुछ ऐसे शब्द कहेंगे जो उसके लिए प्रतिष्ठा-पत्र या पारितोषक का काम करेंगे और उन्हें प्रोत्साहन देंगे। ऐसे प्यार और प्रोत्साहन या उत्साहवर्धन की आवश्यकता अथवा आशा केवल बच्चों को ही नहीं होती बल्कि हर आयु-वर्ग के व्यक्ति को होती है क्योंकि ऐसे कार्य अपनी कलात्मकता अथवा विशेषता के प्रदर्शन (Demonstration) के भाव को भी लिए हुए होते हैं। इससे व्यक्ति का आत्म-विश्वास बढ़ता है और उसकी उमंग-तरंग ऊर्द्धगामी होती है। जिस घर में किसी की सफलता होने पर कोई किसी की पीठ को थपथपाता ही न हो या उसकी सफलता के बारे में कोई दो शब्द भी ऐसे न कहता हो जो उसे अच्छे लगें तो वहाँ व्यक्ति ऐसा महसूस करता है कि इस घर में अपना कोई नहीं। उसे लगता है कि यहाँ सब रूखे-सूखे हैं और न केवल गुड़ देने वाले नहीं हैं बल्कि गुड़ जैसे मीठे शब्द बोलने वाले भी कोई नहीं हैं। ऐसे समय पर उसे फ़ीकापन लगता है और मायूसी होती है और ऐसा लगता है कि वे या तो उसकी कला, महानता या विशेषता के मूल्य को तो जानते नहीं या उन्हें मनुष्य की पहचान नहीं या तो ये स्वयं को ही सब-कुछ समझते हैं; दूसरों को कुछ नहीं समझते या दूसरों की सफलता देख कर उनके मन में डाह और ईर्ष्या आती है इसकी बजाय

उचित उत्साहवर्धक शब्द कह दिये हों तो उससे एक-दूसरे के समीप आते हैं। और यदि किसी के मन में कई कटुता हो भी तो वो उस प्यार से मिट जाती है। परन्तु आज ऐसा किया नहीं जाता। इस कारण परिवारों में अपनापन नहीं भासता।

14. भोजन सात्विक नहीं

जिन घरों में अशुद्ध भोजन बनाया, पकाया और खाया जाता है उन घरों में भी वतावरण अशुद्ध होता है। जो पालतू पशुओं को पालते हैं; उनसे अपना पेट भरते हैं वे पारिवारिक-जनों की पालना करने की बजाय उनके बारे में भी अपनी मन-मत, वैर पाल सकते हैं। जो शराब पी कर अपना होश-हवास गंवाने का यत्न करते हैं उनकी ये आदत उन्हें होश छोड़ कर जोश में ले जा कर परिवार के व्यक्तियों पर भी मर्यादाहीन व्यवहार करने पर अकुल-व्याकुल कर सकते हैं।

इस प्रकार, ये जो कहा गया है कि मनुष्य का जैसा अन्न हो वैसा मन होता है, वह ठीक ही है क्योंकि प्राय: देखा गया है कि भोजन का मनुष्य के विचारों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। वैसे ही उसके विचार और वैसा ही उसका व्यवहार होता है।

मूल कारण है दृष्टि, वृत्ति, स्मृति, स्थिति और कृति का ठीक न होना

यदि ध्यान से देखा जाए तो घर-परिवार में दु:ख और अशान्ति के जो मुख्य कारण हमने गिनाए हैं, वो सभी समस्याएं हमारी दृष्टि, वृत्ति, स्मृति, स्थिति और कृति ही के ठीक न होने के कारण से हैं। इसका विश्लेषण अथवा स्पष्टीकरण यह है कि हमारी कृति तब ठीक नहीं होती जब हमारे मन की *स्थिति* ठीक नहीं होती, अर्थात् जब हमारे मन में उत्तेजना, प्रलोभन, स्वार्थ, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान, भोग-विलास की कामना के कारण से *चंचलता* अथवा *विकृति* होती है। (2) हमारी स्थिति तब ठीक नहीं होती जब हमारी *स्मृति* ठीक नहीं होती, अर्थात् जब हम परम पवित्र तथा परम शान्त परमात्मा की स्मृति की बजाए किन्हीं ऐसे व्यक्तियों की अपरोक्ष (Indirect) या परोक्ष (Direct) याद में होते हैं जिनकी अपनी भी स्थिति ठीक नहीं होती अथवा जिनके अपने विचार-संस्कार, धर्म-कर्म, आचार-व्यवहार, इत्यादि ठीक नहीं होते। ऐसे व्यक्तियों की याद से ही, अथवा मन का उनसे सूक्ष्म सम्बन्ध होने से ही हमारे मन की स्थिति विक्षिप्त, उत्तेजित, उच्छृंखल, चलाएमान, डाँवाडोल या अस्थिर हो जाती है। (3) फिर, हमारी *स्मृति* और *स्थिति* ठीक न होने से ही हमारी वृत्ति भी ठीक नहीं होती क्योंकि इनसे हमारे मन की भावनाएं, कामनाएं, इत्यादि बदल जाती हैं और *वृत्ति* (Attitude) विकारी हो जाती है। (4) अब आगे देखें तो हमारी *वृत्ति* का सम्बन्ध हमारी दृष्टि अर्थात् हमारे दृष्टिकोण से है। हमारे मन में जिस (i) व्यक्ति, (ii) वस्तु (iii) वार्ता (iv) परिस्थिति (v) परिणाम, इत्यादि के प्रति जो मान्यता बन चुकी हो, जैसी विचारधारा स्थिर हो गई हो, वैसे ही उसके प्रति *दृष्टि* (Outlook) बन जाती है। हम वैसे ही रंग का चश्मा पहन कर उसको देखते हैं। एक प्रकार से, हम थोड़े-बहुत पूर्वाग्रहों से, पूर्व विचारों (pre-conditioning) से या बनी हुई धारणाओं अथवा मंसा से सोचते और करते हैं। यह

निश्चित है कि यदि हमारी दृष्टि-वृत्ति, स्मृति और स्थिति ठीक हो तो हमारे कर्म अच्छे होते हैं।

जैसे कृति का आधार स्थिति से और स्थिति का आधार स्मृति है और इस प्रकार विश्लेषण करते हुए हम दृष्टि तक पहुंचते हैं, वैसे ही हम यह कह सकते हैं कि जैसे दृष्टि हो, वैसी वृत्ति होती है और तदानुसार ही हमारी स्थिति तथा कृति होती है। अगर हमारी दृष्टि, वृत्ति, स्मृति और स्थिति ठीक न हों तो कर्म भी ठीक नहीं होते।

फिर ध्यान देने की बात यह है कि इनसे ही हमारे संस्कार बनते हैं और वो संस्कार हमारे मन को रंग लेते हैं और इस प्रकार यह चक्र चलता है। इस चक्रव्यूह का भेदन कर के इससे निकलना ज़रूरी है।

दृष्टि, वृत्ति, स्मृति, स्थिति, कृति, इत्यादि का आधार है– हमारी मान्यताएं

परन्तु हमें यह याद रखना चाहिए कि इन सबकी नींव है– हमारी *मान्यताएं* (Believes), हमारे *विश्वास,* हमारा *निश्चय* अथवा सुनने, पढ़ने, देखने, अनुभव करने अथवा विचार करने की प्रक्रिया से निर्मित हमारा *मत* अथवा *मन्तव्य*। आज संसार में हर व्यक्ति की दृष्टि, वृत्ति, स्मृति, स्थिति और कृति अलग-अलग है क्योंकि उसकी *मान्यताएं,* उसके *मन्तव्य* अथवा जिस *मत* का वो अनुयायी है वह *मत,* दूसरों से अलग है। दूसरे शब्दों में यों कहें कि हरेक व्यक्ति का जीवन-दर्शन अपनी ही तरह का है। उसका अपना ही आत्म-दर्शन और परमात्म-दर्शन, कर्म और कर्म-फल दर्शन, संसार और संस्कार दर्शन, सम्बन्ध और स्थान दर्शन, देश और काल दर्शन, व्यवहार और परमार्थ दर्शन, योग, संयोग, वियोग, सहयोग और प्रयोग दर्शन, धर्म, देव, दानव और मानव दर्शन, अर्थ-अनर्थ, आय और व्यय दर्शन, कर्म नीति और राजनीति दर्शन, सभ्यता, संस्कृति और इतिहास दर्शन तथा ज्ञान और विज्ञान दर्शन है। कोई व्यक्ति पढ़ा-लिखा हो या अनपढ़ हो वह बुद्ध हो या उद्‌बुद्ध हो, उसका विस्तृत अध्ययन हो या उसके विचारों का दायरा बहुत ही संकुचित हो, पूर्वोक्त समस्त दर्शन को मिला कर एक दर्शन (Total Philosophy or Belief System) को लिए हुए है। उसी से ही वह अपना गन्तव्य (Goal) और कृत्य (Role) तथा कर्त्तव्य और अधिकार (Duties & Rights) निश्चित करता है। अत: सर्वप्रथम मनुष्य के मन्तव्यों पर ध्यान देना अत्यावश्यक है क्योंकि *''जैसे उसके विचार होंगे वैसा ही व्यवहार, परिवार और संसार होगा।''* परिवार, विचार, व्यवहार और संसार का परस्पर जो नाता है, वह श्रृंखला की कड़ियों के जैसा है। मनुष्य का जैसा निश्चय हो वैसा ही वह होता है (As the belief so is man अथवा Faith makes the man)। अपने मन्तव्य और गन्तव्य ही से मनुष्य देव या असुर बनता है। अत: पहले इन पर ही ध्यान देना ज़रूरी है।

अपने बारे में मन्तव्य

मनुष्य के मन्तव्यों में से भी सबसे पहला मन्तव्य उसके अपने बारे में है। उसके शेष मन्तव्यों की सारी इमारत उस के अपने बारे में मन्तव्य रूपी भूमि पर ही टिकी है। इसलिए सबसे पहले इस मन्तव्य की चर्चा करना ज़रूरी है कि सोचने, समझने, निर्णय करने, कार्य करने, दृष्टि, वृत्ति,

स्मृति एवं स्थिति के अनुसार कुल-परिवार या संसार में व्यवहार करने वाली यह अद्भुत सत्ता क्या है जिसे 'चेतना' (Consciousness) कहते हैं, जिसके चले जाने के बाद ये शरीर एक ठूंठ-सा (like a log of wood) बन कर पड़ा रहता है। इसके बारे में सत्यता को जानने, मानने, व्यवहार में लाने और अनुभव करने से मनुष्य के जीवन में एक आमूल परिवर्तन (basic change) आता है। जिससे कि उसकी दृष्टि, वृत्ति, स्मृति, स्थिति, इत्यादि भी परिवर्तित और प्रभावित होते हैं। अत: हम कोर्स की शुरूआत इसी से करेंगे।

इस प्रकार हमने घर-परिवार में दु:ख-अशान्ति अथवा कलह-कलेष के कुछ मूल कारणों की चर्चा की है। अब हम अगले पाठों में इनमें से एक-एक को ले कर परिवार के सुधार की चर्चा करेंगे। कुल मिला कर इसे ही ''परिवार में जीवन जीने की कला'' कहा जा सकता है।

इस सत्र के लिए कुछ मुख्य प्रश्न

1. वर्तमान समय घर-परिवार की क्या मुख्य समस्याएं हैं और उनके क्या मूल कारण हैं? ऐसे कुछ आठ मुख्य कारण बताएं।
2. निम्नलिखित में से कौन-सी चार बातें घर-परिवार में कलह-कलेष के कारण हैं?
   (1) स्वार्थ, (2) ईर्ष्या, (3) जिद्द करने का संस्कार, (4) आत्मीयता अथवा स्नेह का अभाव, (5) परस्पर सन्मान देने का अभाव, (6) परस्पर सहयोग की कमी, (7) अपना प्रभुत्व जमाने की कोशिश, (8) भ्रान्ति (Misunderstanding), (9) टाँट (Taunt), (10) चुग़ली अथवा बहकावे की आदत, (11) धीरज की कमी, (12) जोश या अक्रोश, (13) रोब, (14) चंचलता, (15) गर्जना, (16) असभ्य भाषा का प्रयोग, (17) हर बात में स्वयं को बड़ा मानना और दूसरों को छोटा (18) अवहेलना करना, (19) दूसरों की मुनासिब बात को उड़ा देना, (20) अभिमान और अपमान, (21) प्रेम और नेम में असन्तुलन, (22) थोड़ी भी स्वतन्त्रता न देना अथवा कस कर रखना या सख्ती करना, (23) किसी के बारे में ग़लत दृष्टिकोण (attitude) या बुरा प्रभाव (bad impression), (24) भाव की बजाए शब्दों को पकड़ना, (25) मन-गढ़न्त और मिथ्या अनुमान, (26) सम्बन्धों को न निभा सकना, (27) एक-दूसरे से मन की दूरी, (28) एक-दूसरे से वार्तालाप और मेल-जोल में कमी, (29) पारस्परिक सम्बन्धों में नीरसता (30) नशीले या ज़हरीले पदार्थों का सेवन या जीवन में व्यसन, (31) निरर्थक रीति-रिवाज़, फ़जुल खर्ची, (32) कई प्रकार के चस्के, (33) उचित प्रोत्साहन में कमी, (34) भोजन की सात्विकता, (35) दृष्टि, वृत्ति, स्मृति और कृति का ठीक न होना, (36) स्वयं को न जानना अथवा देहाभिमान।
3. क्या आप समझते हैं कि स्वयं के स्वरूप को न जानना ही संसार की सभी भूलों रूपी वृक्ष का बीज है?

छोटा परिवार और विराट परिवार, विनाशी सम्बन्ध, अविनाशी सम्बन्ध और स्व की पहचान

हमने पहले सत्र में विषय प्रवेश करते हुए और परिवार के महत्त्व को बताते हुए कहा था कि शिशु जन्म लेते ही इस परिवार का सदस्य बन जाता है। परन्तु इस प्रसंग में प्रश्न यह उठता है कि कोई बच्चा एक परिवार में और कोई दूसरे परिवार में जन्म लेता है तो उसका आधार क्या होता है अथवा उसके पीछे कारण क्या है? कोई तो एक व्यक्ति के यहाँ जन्म लेता है जो धनी भी है, सरल स्वभाव का भी है, प्रभु-प्रेमी भी है और आचार-विचार में भी कई मर्यादाओं का पालन करता है और दूसरा बच्चा एक ऐसे व्यक्ति के यहाँ जन्म लेता है जो निर्धन है और बच्चे को जन्म लेते ही ऐसे अड़ोसी-पड़ोसी और संगी-साथी मिलते है जिनके स्वभाव-संस्कार दूषित हैं। क्या यह सब कारण के बिना ही होता है?

क्या पूर्व-कर्म के आधार के बिना ही किसी परिवार में जन्म होता है?

संसार का यह अटल नियम माना गया है कि ''**हर-एक परिणाम का कोई कारण अवश्य होता है**'' (Every effect has a cause)। ये भी कहा गया है कि ''**जो जैसा बीज बोता है वैसा ही उसका फल पाता है**'' (As we sow so shall we reap)। तब अलग-अलग परिवारों में, जिनकी अलग-अलग नैतिक, आर्थिक, सामाजिक और वैचारिक स्थिति है, उसका भी तो अवश्य कोई कारण होता होगा। बच्चे ने तो अभी कर्म करना प्रारम्भ ही नहीं किया। अत: जन्म के समय और शिशु काल में जो उसे सुख-दु:ख रूपी फल प्राप्त होता है उसका कर्म रूपी बीज तो उसने जन्म से पहले ही कभी बोया होगा।

क्या पूर्व-कर्मों का होना यह सिद्ध नहीं करता कि शरीर में कोई ऐसी अव्यक्त सत्ता है जो जन्म से पहले भी थी?

सोचने की बात है कि बच्चा तो अभी ही हमारे सामने आया है; तब अवश्य ही इसमें ऐसी कोई अव्यक्त, गुप्त, अदृश्य, सूक्ष्मातिसूक्ष्म सत्ता होगी जिसने पहले अलग-अलग नाम, रूप, देश, काल, परिवार और परिस्थिति में कुछ कर्म किये होंगे और अब वह ''जैसी करनी वैसी भरनी'' रूपी उक्ति अथवा नियम के अनुसार दु:ख-सुख ले रहा होता है।

अत: वह क्या है, कौन है? वह सत्ता कैसी है? शरीर में कहाँ रहती है? उसके निजी गुण-धर्म क्या हैं?– इन तथ्यों को जानना आवश्यक है क्योंकि वही तो अपने लिए '**मैं**' शब्द का प्रयोग करती है।

वह अव्यक्त सत्ता क्या है जो अपने लिए 'मैं' शब्द प्रयोग करती है?

यदि किसी के शरीर की आयु साठ वर्ष भी हो जाती है तो भी वह सत्ता कहती है कि पाँच वर्ष की आयु में उसका फलाँ नाम से एक दोस्त था जिससे मिल कर खेलना-कूदना और लिखना-पढ़ना प्रारम्भ हुआ था। डाक्टर और शरीर विज्ञान वाले विशेषज्ञ कहते हैं कि मनुष्य के हर 7 वर्ष में शरीर के सारे जीव-कोष (Body cells) बदल जाते हैं; तो जिसके शरीर के समस्त जीव-कोष 60 वर्षों में पाँच बार बदल चुके हों और अब सब नये जीव-कोष हों जो कि पहले नहीं थे। तब यह कहने वाला कौन है कि ''जब मैं 5-6 वर्ष का था.....?'' तब ये जीव-कोष तो थे ही नहीं। अवश्य ही जीव-कोषों के इस शरीर में कोई ऐसी सत्ता है जो 60 या 55 वर्ष पहले भी थी और अब भी है और वह उसी खुशी या अनुभूति की स्मृति से कहती है कि मेरा फलाँ नाम का दोस्त था, अर्थात् वह सत्ता तो इन सब वर्षों से चली आ रही है। न केवल इस शरीर में जन्म लेने से पहले उसने किसी अन्य शरीर को ले कर कर्म किये थे और अब भी वह 60 वर्षों से कर्म करती चली आ रही है।

'मैं' शब्द का प्रयोग हर आयु, हर लिंग वाला करता है तो अवश्य ही प्रयोक्ता शरीर से भिन्न होगा

शरीर की आयु 66 वर्ष हो या कुछ भी हो, वह अपने लिए 'मैं' शब्द का प्रयोग करती चली आ रही है। पहले यदि उसका नाम **मिस** (Miss) कौशल्या **मित्तल** था तो अब विवाह के बाद उसका नाम **मिसिज़** (Mrs.) कौशल्या **अग्रवाल** हो गया है परन्तु ''मैं'' शब्द ऐसा है कि वो नर-नारी, बच्चा-बूढ़ा, मामा-चाचा, माता-पिता सभी करते हैं। ये सभी का सांझा नाम है। केवल हिन्दी में ही नहीं अंग्रेजी में भी `**I**' शब्द का प्रयोग हर आयु में, जन-जाति, वर्ण, नस्ल, धर्म, संस्कृति और देश वाले करते हैं। अवश्य ही ये एक ऐसी सत्ता है कि जो इस देह से भिन्न है और जिसे देह के आधार पर हुए सब वर्गों या विभाजनों के लोग एक-सा कर सकते हैं।

अव्यक्त सत्ता देह नहीं, ''देही'' है, शरीर नहीं आत्मा है

ये 'देह' नहीं 'देही' (dweller in body) है। शरीर नहीं है, शरीर इसका निवास है अथवा कर्म करने और सुख-दु:ख भोगने के लिए इसे मिला हुआ कर्मेन्द्रियों का ढाँचा है। '**मैं**' शब्द का प्रयोग करने के बाद ही व्यक्ति ये कहता है कि '**मैं**' फलाँ का **मामा** हूं अथवा '**मैं**' फलाँ की **माता** हूं तो '**मामा**' और '**माता**' हर सम्बन्ध में भी '**मैं**' शब्द का प्रयोग करने वाली अव्यक्त सत्ता अलग है जो कि दोनों या सभी सम्बन्धों में है। केवल सार-संक्षेप के कारण से यह न कह कर कि ''मैं **देह के आधार** पर इसकी 'माता' हूं अथवा देह के नाते से इसकी 'जननी' हूं, केवल यही कहा जाता है कि ''**मैं**'' इसकी माता अथवा जननी हूं''। 'देह के आधार पर' अथवा 'देह के नाते से'– इन शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाता बल्कि ये समझ लिया जाता है कि यह तो है ही। इसे अंग्रेजी मुहावरे में कहा जाता है कि यह तो `understood' (परोक्ष रूप से ज्ञात)

है। लिखते समय कई बार ऐसे शब्दों को कोष्टक (bracket) में दे दिया जाता है जैसे कि– (**मैं देह के आधार पर**) 'इसकी माता हूं' परन्तु पहले कभी जिसे यह मान कर वर्णन नहीं किया जाता है कि यह तो ज्ञान है ही, समयान्तर में उस सर्वमान्य बात को लोग भूल ही गये और स्वयं को ही देह मानने लगे।

प्रकृति के बने पदार्थों का प्रयोजन किसी चेतनकर्त्ता और भोक्ता ही के लिए

हम संसार में यह भी देखते हैं कि प्रकृति के बने हुए पदार्थों का स्वयं अपने लिए कोई उद्देश्य या प्रयोजन नहीं होता है बल्कि वे किसी चेतन के प्रयोग के लिए बने होते हैं। उदाहरण के तौर पर चारपाई और उस पर बिछा हुआ बिस्तरा, कुर्सी और उस पर रखी हुई गद्दी, मेज़ और उस पर टिका हुआ पेपर-वेट या पुस्तक का **अपने लिए कोई प्रयोजन नहीं है।** वे किसी चेतन कर्त्ता और भोक्ता के लिए हैं। उस कर्त्ता और भोक्ता में संकल्प करने, निर्णय करने, याद करने, प्रेम करने इत्यादि की योग्यताएं होती हैं और वह ही अपने प्रयोग के लिए उन वस्तुओं को इकट्ठा करता है वह पेपर-वेट को कागज़ पर रखता है ताकि वह उड़ न जायें और गुस्सा आने पर उसी पेपर-वेट को उठा कर ज़ोर से कहीं पटक देता है या किसी को मार देता है। पेपर-वेट तो पड़ा ही रहता है; उसके **प्रयोग का निर्णय चेतन करता है**; उसी में प्यार हो तो वो उस सुन्दर पेपर-वेट को किसी को गिफ्ट (gift) के तौर पर दे देता है और यदि घृणा और उत्तेजना हो तो वह उसकी कीमत की भी परवाह न कर के लोगों को धमकाने के लिए और नाराज़गी ज़ाहिर करने के लिए उसे दिवार से दे मारता है। इस प्रकार प्रकृति की सत्ता अलग है और उसके प्रयोक्ता और भोक्ता पुरुष की सत्ता अलग है। पहली जड़ है और दूसरा चेतन है। पहली भोग्य है, दूसरी भोक्ता है। ये चेतन ही अपने लिए 'मैं' शब्द का प्रयोग करता है। ऐसे ही प्रकृति का बना शरीर अलग है और उसमें रहने वाला 'देही' अथवा देह रूपी पुरी में रहने वाला 'पुरुष' अथवा आत्मा (self) अलग है।

आत्मा सृष्टि रंगमंच पर एक्टर; देह इसके वस्त्र

हमारे ये सब नाते देह के आधार पर हैं। हर जन्म में ये नाते बदलते रहते हैं। जैसे कोई एक्टर भिन्न-भिन्न वेश और आभूषण धारण करके भिन्न-भिन्न पार्ट करता है वैसे ही आत्मा सृष्टि मंच पर इस सृष्टि रूपी नाटक में भिन्न-भिन्न कार्य करता है। अत: विश्व के बारे में ये दृष्टिकोण बनाना ज़रूरी है कि ये **संसार एक कर्म-क्षेत्र है**। यहाँ आत्मा जैसा कर्म रूपी बीज बोती है, वैसा उनका फल पाती है, आदतों को बदलना है और वृत्ति और प्रवृत्ति को परिवर्तन करना है। यह संसार एक बहुत बड़ा नाटकघर है, यह पृथ्वी उसका रंगमंच है, जहाँ हम सब आत्माएं एक्टर्स (actors) हैं। जब हम शरीर छोड़ कर दूसरा शरीर लेते हैं और शारीरिक मृत्यु के बाद नया शारीरिक जन्म होता है तो गोया हमारा ड्रेस (dress) और एड्रेस (address), अर्थात् शरीर रूपी वस्त्र और कुल, परिवार तथा घर रूप एड्रेस बदल जाता है।

जबकि आत्मा दिखाई नहीं देती तब उसका अस्तित्व कैसे माना जाए?

कोई व्यक्ति कह सकता है कि यदि आत्मा नाम की कोई सत्ता है तो वह दिखाई क्यों नहीं देती? अन्य कहते हैं कि आत्मा को किसी ने देखा थोड़े ही है? इस विषय में यह सोचने की ज़रूरत है कि बिजली की तरंगें भी तो दिखाई नहीं देती; परन्तु जब बिजली की तरंगे तार में आना शुरू कर देती हैं, तब पंखा चलने लगता है और पंखे को चलता देख कर हम कह उठते है कि– ''बिजली आ गई''। जब बिजली की तरंगें आती हैं; तब ही यदि स्विच ऑन हो तो ट्यूब या बल्ब में भी रोशनी आ जाती है, रेडियो में आवाज़ सुनने में आती है और टी.वी. (T.V.) पर दृश्य देखने में आते हैं। अत: देखने, सुनने, चलने इत्यादि की **क्रिया से हम ये निष्कर्ष लेते हैं** कि इसके पीछे बिजली की शक्ति है और जब ये सब उपकरण काम नहीं करते तो हम कहते हैं कि ''**बिजली चली गई**'' अथवा बन्द हो गई। ऐसे ही शरीर द्वारा देखना, सुनना इत्यादि शक्तियों को देख कर हम ये समझ लेते हैं कि इसके पीछे कोई चेतन सत्ता है, अर्थात् बिजली, चुम्बक, पृथ्वी के आकर्षण (गुरुत्वाकर्षण) इत्यादि से भी अलग कोई सत्ता है, जिसमें कि सोचने, समझने, अनुभव करने, इच्छा तथा प्रयत्न करने, याद करने इत्यादि की शक्तियाँ हैं।

परिणाम को देख कर कारण या कर्त्ता को मानना

इस प्रकार हम देखते हैं कि परिणाम से भी तो कारण को जाना जाता है। दिन और रात के तथा ऋतुओं के क्रम को देख कर ही तो यह निष्कर्ष लिया जाता है कि पृथ्वी घूमती है। ज़हरीले भोजन से कई लोगों की मृत्यु होने के परिणाम स्वरूप ही तो डाक्टर ये निष्कर्ष लेता है कि कुछ ग़लत चीज़ें खाई होंगी। परिणाम से कारण की ओर जा कर ही तो वह कारण का निवारण करता है। अत: सब चीज़ें इन चर्म चक्षुओं से नहीं देखी जातीं। इनकी तो अपनी सीमा है। चर्म चक्षु भी स्वयं तभी देख सकते हैं जब उनके पीछे वो चेतन सत्ता काम कर रही हो। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित बातें विचारणीय हैं।

1. शिशु के हंसने-रोने के कारण क्या हैं?

शिशु अपने पालने में लेटा हुआ कभी हंसता है, कभी रोता, चिल्लाता और हाथ-पाँव मारता है। उसे कोई शारीरिक व्याधि भी नहीं है जिसके कारण उसे पीड़ा हो, न ही उसे अभी कोई स्वादिष्ट एवं रसीला पदार्थ पिलाया है, जिसके कारण वह खुश हो, तब वह ऐसा क्यों करता है? क्या ये सोचा जा सकता है कि उसके मन में कुछ मधुर एवं कटु पूर्व स्मृतियाँ उभर रही हैं परन्तु वह अभी उन्हें व्यक्त करने में असमर्थ है? या अभी वह नये माहौल में नये लोगों को देख कर कभी मुस्करा देता है और कभी घबरा जाता है, परन्तु कुछ कह नहीं पाता। स्वप्न में भी तो हम कई ऐसे दृश्य देखते हैं जो हमने इस जीवन में नहीं देखे होते और शायद वे हमारी पूर्व स्मृतियाँ ही होती हैं जो मिल-जुल कर नये दृश्यों का निर्माण करती हैं। यदि इन सबका कारण पूर्व-स्मृतियाँ माना जाए तो अवश्य ही किसी पूर्व सत्ता को मानना होगा। इसे ही कोई '**आत्मा**' कोई '**शाश्वत चेतन**' या ऐसे किसी अन्य नाम से कहता है।

2. यदि जन्म और सुख-दु:ख का आधार पूर्व-जीवन के कर्म नहीं तो और क्या है?

किसी बच्चे को जन्म लेते ही कोई व्याधि घेर लेती है या वह दुर्घटनाग्रस्त हो जाता है। अभी तो उसके कर्मों का कोई लेखा-जोखा भी नहीं है। तो जबकि हम संसार में देखते हैं कि अपराध करने पर ही किसी को दण्ड दिया जाता है और कोई अच्छा कर्म करने पर ही किसी को वेतन, पारितोषक, इत्यादि प्राप्त होता है, तब क्यों न समझा जाये कि किन्हीं पूर्व-कालीन कारणों को किसी पूर्व विद्यमान सत्ता को कष्ट मिल रहा है अथवा सुख की प्राप्ति हो रही है?

3. एक ही माता-पिता के बच्चों में भिन्न-भिन्न रुचि क्यों?

किसी को बाल्यकाल में ही क्रिकेट खेलने में रुचि होती है, किसी को गीत गाने की, किसी को पढ़-लिखकर विद्वान बनने की और किसी को सत्संग सुनने की। एक ही माता-पिता के दो बच्चे एक ही प्रकार का भोजन प्राप्त करते हैं और लगभग एक ही माहौल में रहते हैं तथा बड़े होते हैं, परन्तु प्रारम्भ से ही उनकी ऐसी रुचि, इच्छा अथवा प्रयत्न होने का क्या कारण है?

4. इसका कारण 'जीन्स' को और मूल कारण 'चाँस' को मानने से अव्यवस्था

यदि यह कहा जाए कि आनुवंशिकी (Genetic System) अर्थात् उनके शरीर और व्यक्तित्व को दिशा देने वाले किन्हीं शारीरिक कोषों में इसकी संभावना अदृश्य रूप से भरी होती है, तब फिर यह प्रश्न उठेगा कि एक ही परिवार में जन्म लेने के बावजूद भी उनके भिन्न-भिन्न 'जीन्स' (Genes) क्यों हैं? अगर यह कहा जाये कि इसका कारण कोई नहीं है, बल्कि ये तो **संयोग** (Chance) की बात है, तब यह उत्तर तर्क-संगत, संतोषजनक और वैज्ञानिक तौर से सिद्ध किया जा सकने वाला तो नहीं है और इस तरह से तो हरेक बात के लिए कहा जा सकता है कि वह चांस ही के कारण से ऐसी है। इस तरह से तो संसार में ज्ञान-विज्ञान को धक्का लगेगा। कोई व्यक्ति किसी न्यायाधीश को कहेगा कि– ''साहिब आपने मुझसे न्याय नहीं किया वर्ना मैं आपको सच कहता हूं कि मैं अपराधी नहीं हूं'' और यदि न्यायाधीश उसके उत्तर में कह देगा कि न्याय का होना या न होना तो **चांस** (Chance) की बात है, तब तो संसार में किसी भी मूल्य को स्थिर नहीं किया जा सकता। कोई व्यक्ति अपनी पत्नी पर हाथ उठाएगा और मार-पीट करेगा तो पूछ-ताछ करने के बाद यदि वह ये कहे कि यह तो 'चांस' से मार-पीट हो गई है तब तो गंभीर प्रश्न भी हंसी-मज़ाक और अट्टहास का रूप ले लेंगे और संसार की सारी व्यवस्था ही अस्त-व्यस्त हो जायेगी। अत: क्या ऐसा न सोचा जाये कि हर आत्मा अपने पिछले कर्मों के आधार पर बने हुए कुछ संस्कार साथ ले आई है जिनसे प्रेरित हो कर वो अभी किन्हीं रुचियों को व्यक्त करती है और नये माहौल में कुछ नई रुचियाँ और नये संस्कार बना रही है और कि हरेक को जीन्स (Genes) भी अपने कर्मों और संस्कारों के आधार पर मिलते हैं।

5. पूर्व-जन्मों के हालात की जाँच-पड़ताल होने पर वे सत्य

कुछ छोटे बच्चों ने अपने पूर्व जन्म के कई हालात बताये हैं। वे कई पुस्तकों में प्रकाशित हुए हैं। उन वृत्तान्तों की कई लोगों ने मिल कर एक संगठन अथवा टीम (Team) बना कर

छानबीन की और उसके बाद ही वे लिखे और छपवाये गये। ऐसे बच्चे प्राय: हर देश में, हर धर्म में हुए हैं। कुछ ऐसे धर्मों में भी हुए हैं जिनका 'पूर्व जन्म' अथवा 'पुनर्जन्म' में विश्वास नहीं है। उन छोटे बच्चों को उन हालात को बताने का कोई प्रलोभन भी नहीं था, न वह मानसिक रूप से असामान्य (Abnormal) असन्तुलित थे। वे भोले-भाले, सीधे-सादे थे, और उन्हें पूर्व जन्म की याद आती थी और उन्होंने संगठित ग्रुप के लोगों को उस स्थान पर जा कर उन लोगों की ठीक पहचान दी जो पूर्व जन्म में उनसे सम्बन्धित थे और जिन्हें उन्होंने वर्तमान जीवन में देखा ही नहीं था। तब क्यों न माना जाये कि उन्होंने सरल स्वभाव से सत्य बात बताई है? कई बच्चों ने तो अपनी मृत्यु के कारण भी बताए हैं। कई छोटे बच्चों ने अपनी पूर्व-कालीन पत्नी से मिलते हुए यह कहा कि–''यह हमारी पत्नी है'' और अपने से भी बड़ी आयु के पूर्व कालीन बच्चों के बारे में भाव-विभोर हो कर उन्हें ऐसा प्यार करने लगे जैसे कि सचमुच कोई पिता अपने बच्चों से करता है। उनमें से कुछ वृत्तान्त तो ग़लत हो सकते हैं परन्तु जिन वृत्तान्तों की परीक्षा की गई और वे सत्य पाये गये, उन्हें अपनी हठधर्मी से असत्य मानना तो ग़लत होगा। जबकि पिछला शरीर और मस्तिष्क जला दिया गया या दफ़न दिया गया और वह राख़ या धूल हो गया तब ये कौन है जो बीते जन्म से पहले के समय की और मृत्यु से भी पहले के समय की या मृत्युकाल की भी बातें ऐसे स्पष्ट करता है जैसे कि वो उसकी **आपबीती** हो और उसके सामने वर्तमान की तरह प्रत्यक्ष हो और उसमें **संस्मरण** (Memories) और संवेग (Emotions Feelings) उभर रहे हों।

6. सम्मोहन क्रिया द्वारा पुनर्जन्म और पूर्व-जन्म स्पष्ट

कुछ वैज्ञानिकों ने सम्मोहन क्रिया का वैज्ञानिक रूप से प्रयोग किया है और उस प्रक्रिया द्वारा वे सम्मोहित सत्ता को इस जन्म से पिछले, उससे भी पिछले और उनसे भी पिछले जन्म के काल में ले गये और उस सम्मोहन की दशा में उनसे पूछा कि वे क्या देख रहे हैं, वो कहाँ हैं, उनका नाम क्या है, वे कौन-सी वेष-भूषा लिये हैं, वो कौन-सी भाषा बोलते हैं? तो उन्होंने जो तथ्य बताये, बद्धिजीवी लोगों ने उनकी जाँच-पड़ताल की और वे ठीक पाये गये। ऐसे वृत्तान्त (Case) कोई एक-दो ही नहीं हुए बल्कि ऐसे कई वृत्तान्तों का संग्रह प्रकाशित हो चुका है और जिन्होंने वह क्रिया की, उस सम्मोहित व्यक्ति से पूछा, फिर उसकी जाँच-पड़ताल की और तब उसको छपवाया। वे स्वयं भी वैज्ञानिक हैं और उनकी पुस्तकें भी विश्व-भर में पढ़ी जाती हैं। तब क्या उन प्रमाणों को असत्य माना जाये?

७. मनुष्य को अनेक प्रकार के डर जिनका आधार पूर्वजन्म का अनुभव

हम देखते हैं कि किसी व्यक्ति को पानी में उतरने से डर लगता है, चाहे वह पानी इतना गहरा क्यों न हो कि जिसमें उस व्यक्ति के डूबने का ज़रा भी ख़तरा न हो। अन्य किसी को थोड़ी भी अग्नि भड़कने पर बहुत भय लगता है। तीसरा कोई बहुत दूर हो रही फायरिंग की आवाज़ सुन कर के गोली के भय से चौंक जाता है, हालांकि उस ने इस जीवन में न किसी व्यक्ति को डूबते देखा है, न जलते और न गोली से मरते। अत: प्रश्न उठता है कि इस भय की जड़ कहाँ

है? मनोवैज्ञानिक लोग इसे एक विशेष प्रकार का भय तथा आशंका मानते हैं, जिसे वे फोबियास (Fobias) कहते हैं। आज उनका भी एक वर्ग यह मानता है कि यह पिछले किसी जन्म में डूबने, जलने या गोली लगने इत्यादि घटनाओं के कारण होता है। इससे तो पूर्व सत्ता का होना प्रमाणित है।

8. क्या भाग्य से यह सिद्ध नहीं होता कि कोई पुनर्जन्म लेने वाली चेतन सत्ता है?

लोग प्राय: सफलता या असफलता के प्रसंग में कहा करते हैं कि उनके सौभाग्य या दुर्भाग्य के कारण ऐसा हुआ। बहुत बार भरसक पुरुषार्थ करने के बाद भी किसी को सफलता नहीं मिलती और दूसरे किसी को प्राय: हर कार्य में सफलता मिलती है। तब भी यह कहा जाता है कि प्रथम के भाग्य खोटे हैं और दूसरे के अच्छे। प्रश्न उठता है कि ये भाग्य (Luck) क्या है? अन्य कारणों के अतिरिक्त यह भी एक कारण या कारक (Factor) तो होता ही है। यह भाग्य क्या है? यह पूर्व-कर्मों की प्रारब्ध ही तो है। अत: भाग्य के भिन्न-भिन्न होने के कारण भी इस व्यवस्थापूर्वक संसार में मानना पड़ता है कि इस जन्म से पहले भी कुछ कर्म कर के उनके आधार पर भाग्य बनाया गया है। तब यह क्यों न माना जाये कि इस शरीर में एक ऐसी सूक्ष्म सत्ता विराजमान है जो जन्म-पुनर्जन्म लेती है।

इस प्रकार, अन्य भी कई ऐसे तर्क प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि शरीर से भिन्न, आत्मा नाम की कोई चीज़ है।

9. विश्व एक विराट परिवार: आत्मा-आत्मा भाई-भाई

पूर्वोक्त से स्पष्ट है कि माता-पिता, मामा-चाचा आदि नाते देह के आधार पर हैं और केवल एक जन्म के लिए हैं क्योंकि आत्मा जब एक शरीर छोड़ कर दूसरा शरीर लेती है तो ये नाते टूट जाते हैं, और दूसरे जन्म में नये रिश्ते-नाते बनते हैं। हमारे दैहिक नाते तो नाशवान हैं और कर्मों के लेखे अथवा हिसाब-किताब के आधार पर हैं परन्तु हम सभी का अविनाशी नाता तो **आत्मिक** नाता है। इस प्रकार, दो प्रकार के नाते हैं।

हम कहते हैं कि ''**हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई हैं आपस में भाई-भाई**'' तो अवश्य ही हम देह के नाते की बात न कर के आत्माओं के बीच **अविनाशी** नाते की बात कर रहे होते हैं। वर्ना सभी की देह के माता-पिता तो भिन्न-भिन्न हैं; तब सभी ''**भाई-भाई**'' किस नाते से हुए? अवश्य ही **दैहिक** अथवा **लौकिक** नाते के अतिरिक्त कोई आत्मिक, अलौकिक अथवा पारलौकिक नाता है जिसके आधार पर वे सभी भाई-भाई हैं। उस नाते के आधार पर यह विश्व एक वृहद अथवा विराट परिवार है।

10. सभी के परमपिता एक परमात्मा

यदि आत्मा-आत्मा भाई-भाई हैं, तब तो इन सभी के कोई माता-पिता भी होंगे। चूंकि वह दैहिक माता-पिता के भी अनादि-अविनाशी माता-पिता होंगे, इसलिए उन्हें '**परमपिता**' कहना ही अधिक उपयुक्त होगा। पिता शब्द कई अर्थों में प्रयोग किया जाता है। जो जन्म देता है, उसे भी

पिता कहा जाता है, जो किसी राष्ट्र का निर्माता होता है, उसे **राष्ट्रपिता** (Father of the Nation) कहा जाता है। जो किसी ज्ञान, विज्ञान या सिद्धान्त का जन्म दाता होगा, उसे भी उस विद्या का 'पिता' कहते हैं जैसे कि न्यूटन को 'विज्ञान का पिता' कहा जाता है। जो नगर-निगम का मेयर (Mayor) होता है, उसे '**नगर-पिता**' (City Father) कहा जाता है। जो गिरजाघर (Church) में धार्मिक ज्ञान देता है उसे भी '**पिता**' (Father) कहा जाता है, अपने-अपने धर्म गुरु को भी लोग 'बाबा' कहते हैं। प्रजापिता ब्रह्मा या आदम को सृष्टि के '**आदिपिता**' कहा जाता है। परमात्मा इन सभी के आत्मिक पिता हैं, इसलिए वे 'परमपिता' भी हैं और चूंकि वे ईश्वरीय ज्ञान, योग एवं दिव्य गुण रूप विद्या पढ़ कर नई सृष्टि की स्थापना करते हैं, इसलिए भी वे 'परमपिता' हैं। सभी आत्माएं अनादि-अविनाशी होते होते हुए भी उस एक परमपिता की सन्तान हैं क्योंकि वह ही सभी को कल्पान्त में ज्ञान रूपी अमृत पिला कर 'मरजीवा' बनाता, अर्थात् नया जन्म देता है, वह सर्वप्राचीन, सम्पूर्ण धर्म की पुनः स्थापना भी करता है, वह एक पिता की तरह अपने गुणों– पवित्रता, शान्ति इत्यादि का अथवा सम्पूर्ण सुख-शान्ति का वर्सा भी देता है। वह विराट विश्व रूपी परिवार का 'पिता' अथवा 'बाबा' है। परन्तु चूंकि वह शरीर-रहित (अशरीरी; Incorporeal) है और उसका किसी भी आत्मा के साथ हिसाब-किताब नहीं है, इसलिए वह शारीरिक जन्म नहीं लेता है। इसलिए वह केवल पिता ही नहीं, माता भी हैं, स्वामी भी और सखा भी। आत्मा अपने प्यार के किसी भी रूपान्तर के आधार पर उससे कोई भी नाता जोड़ सकती है। यद्यपि वह सभी को पवित्रता, सुख-शान्ति का **वर्सा देने के कारण** सभी का '**परमपिता**' तो है ही। उन परमपिता के हम सभी बच्चे हैं, इसलिए ही उक्ति प्रसिद्ध है– ''वसुधैव कुटुम्बकं''।

आत्मा एक ज्योति-बिन्दु है, परमात्मा गुणों के सिन्धु हैं

हरेक आत्मा का अपना वास्तविक स्वरूप अथवा स्वधर्म पवित्रता एवं शान्ति है, तभी तो हरेक आत्मा क्रोध, अभिमान, घृणा, इत्यादि को पसन्द नहीं करती और स्वयं भी शान्त रहना चाहती है तथा विश्व में भी शान्ति चाहती है। परन्तु परमपिता परमात्मा, जो कि कर्मों का कोई हिसाब-किताब न होने के कारण कर्मातीत और अजन्मा हैं, पवित्रता, आनन्द, शान्ति, प्रेम, इत्यादि के सिन्धु हैं। उन परमपिता के बारे में कहा जाता है कि वे ज्योतिस्वरूप हैं, एक लाईट (Light) हैं, माईट (शक्ति) हैं, नूर (प्रकाश) हैं, सदा जगती-ज्योति हैं। जैसे आत्मा ज्योति का एक कण अथवा बिन्दु है, वैसे ही परमात्मा भी ज्येतिबिन्दु ही है परन्तु वह सर्व गुणों के सिन्धु हैं। जैसे 'महात्मा' शब्द आत्मा के अधिक लम्बे, चौड़े, ऊंचे या गहरे होने का वाचक नहीं है बल्कि आत्मा के गुणों की महानता का, अथवा उसकी पवित्रता एवं शान्ति की अधिक पराकाष्ठा का वाचक है वैसे ही 'परमात्मा' शब्द भी सभी आत्माओं से अधिक पवित्रता, शान्ति, आनन्द, प्रेम इत्यादि का वाचक है; वह भी उसकी व्यापकता या उसके धन-फल (Volume) का वाचक नहीं है। उसी ज्योति स्वरूप परमात्मा का स्मरण-चिह्न शिवलिंग नाम से भारत में तथा अन्यान्य नामों, अन्यान्य धर्मों या देशों में हैं। उस प्रतिमा का नाम 'शिवलिंग' या 'ज्योतिर्लिंग' इसलिए है कि परमात्मा सब का कल्याणकारी (शिव) है और ज्योतिस्वरूप है और उसका पुरुष या नारी जैसा रूप (लिंग) नहीं बल्कि ज्योति ही का रूप है।

11. परमधाम अथवा ब्रह्मलोक के वासी

जिस लोक में हम शरीरधारी रहते हैं, उसे '**साकार लोक**', 'स्थूल लोक' या 'मनुष्य-सृष्टि' कहते हैं। इसके सूर्य, तारागण इत्यादि के भी पार एक सूक्ष्म प्रकाश में दिव्य लोक है, जिसे '**अव्यक्त लोक**' कहते हैं। वहाँ सूक्ष्म एवं प्रकाशमय शरीर वाले ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकर का निवास है। उसमें न ध्वनि है न गति। वह आत्माओं की मुक्त अवस्था में रहने का धाम है। उसे ही '**परमधाम**', '**ब्रह्मलोक**', '**परलोक**', '**शान्तिधाम**', '**निर्वाणधाम**' नाम से जाना जाता है। सभी आत्माएं अपने-अपने समय पर सृष्टि मंच पर अपना पार्ट करने के लिए आती हैं। अत: इस सभी का 'घर' 'ब्रह्मलोक' अथवा 'परमधाम' ही है। परमपिता परमात्मा 'शिव' भी धर्म-ग्लानि अर्थात् नैतिक मूल्यों का ह्रास होने पर इसमें मनुष्य-सृष्टि में अवतरित होते हैं। चूंकि वे कर्मातीत हैं, इसलिए वे किसी माता के गर्भ से जन्म नहीं लेते बल्कि एक साधारण मनुष्य के तन में दिव्य प्रवेश करते हैं जिनको वे अब '**ब्रह्मा**' नाम देते हैं। उस ब्रह्मा के मुखारविन्द से वे ईश्वरीय ज्ञान तथा सहज राजयोग की शिक्षा देते हैं और पतितों को पावन कर मनुष्य को देवता बनाते हुए एक नई सृष्टि की पुनर्स्थापना करते हैं जिसे ही 'सतयुगी सृष्टि', 'दैवी सृष्टि', 'स्वर्ग' अथवा '**वैकुण्ठ**' कहा जाता है।

12. सतयुगी सृष्टि की विशेषताएं

इस नई सृष्टि में दु:ख तथा अशान्ति नाम मात्र भी नहीं होते क्योंकि सभी काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या-द्वेष इत्यादि मनोविकारों को छोड़ कर 'पवित्र प्रवृत्ति' वाले होते हैं। इसी सृष्टि के बारे में कहा गया है कि यहाँ 'शेर और गाय भी एक घाट पानी पीते हैं', 'दूध और घी की नदियाँ बहती हैं', न किसी को रोग होता है, न ही यहाँ निर्धनता होती है, न लड़ाई-झगड़ा या हिंसा। इसलिए ही स्वर्ग का गायन है। सतयुग तथा त्रेतायुग की इसी सृष्टि की तुलना में द्वापर तथा कलियुग को '**नरक**' कहा जाता है। सतयुग, स्वर्ग अथवा वैकुण्ठ के आदि काल अर्थात् सतयुग के प्रारम्भ में श्री लक्ष्मी और श्री नारायण का राज्य होता है। इस में एक धर्म, एक राज्य, एक भाषा होती है। यहाँ लगभग 2500 वर्ष पूर्ण पवित्रता-सुख-शान्ति का साम्राज्य होता है और इस काल में देवी-देवताओं के कुल 21 जन्म होते हैं। सतयुग से पहले, अर्थात् कलियुग के अन्त और सतयुग के प्रारम्भ के संधि काल में जो नर-नारी ईश्वरीय ज्ञान, योग, दिव्य गुणों की धारणा तथा ईश्वरीय सेवा के द्वारा, जो कि परमपिता परमात्मा शिव प्रजापिता ब्रह्मा और जगदम्बा सरस्वती के द्वारा सुनाते हैं, वे ही स्वर्गिक स्वराज्य का ईश्वरीय जन्म-सिद्ध अधिकार प्राप्त करते हैं।

चूंकि स्वर्ग में ही सम्पूर्ण पवित्रता, सुख और शान्ति है, इसलिए घर-घर को स्वर्ग-समान अथवा विश्व को 'स्वर्ग' बनाने की बात प्रसिद्ध है। चूंकि स्वयं परमपिता परमात्मा, प्रजापिता ब्रह्मा और जगदम्बा सरस्वती द्वारा ईश्वरीय ज्ञान, सहज राजयोग तथा दिव्य गुणों की धारणा की जो शिक्षा देते हैं, उस द्वारा नर श्री नारायण और नारी श्री लक्ष्मी अथवा नर-नारी देवी-देवता बनते हैं, इसलिए ही ''नर से नारायण'' या 'मनुष्य से देवता' बनने की प्रेरणा दी जाती है।

13. सतयुग में दैवी प्रवृत्ति और सात्त्विक स्थिति

सतयुग और त्रेतायुग में कोई भी घर-परिवार को छोड़ कर कर्मों का सन्यास कर के जंगल में नहीं चला जाता था बल्कि सभी दैवी प्रवृत्ति मार्ग वाले थे; कोई भी निवृत्ति मार्गीय नहीं था। तब सभी की सात्त्विक स्थिति थी। चूंकि उन दो युगों में दु:ख तथा अशान्ति नाम मात्र भी न थे, इसलिए ये कहना कि यह संसार सदा से दु:खों का घर रहा है, ग़लत है। यहाँ दु:ख और अशान्ति का प्रवेश तो द्वापर युग में प्रारम्भ हुआ जब मनुष्य आत्माभिमानी (Soul-consciousness) से देह-अभिमानी बना, अर्थात् स्वयं को देह मानने लगा और इस भ्रान्ति के कारण मनुष्य काम, क्रोधादि विकारों में प्रवृत्त होने लगा। इसलिए ही कहा गया है कि ''काम, क्रोध, लोभादि नरक के द्वार हैं'' और कि ''पवित्रता सुख-शान्ति की जननी है'' और अपवित्रता ही दु:ख-अशान्ति की माता है। चूंकि देह-**अभिमान** ही के कारण मनुष्य ने पाप करना प्रारम्भ किये, इसलिए ही ''**पाप का मूल अभिमान**'' (देहाभिमान) ही को माना जाता है। चूंकि काम, कोधादि के द्वारा ही मनुष्य की दृष्टि, वृत्ति, स्मृति और स्थिति बिगड़ी, इसलिए इन्हें ही '''विकार' कहा गया है। इन को छोड़े बिना मनुष्य सुख-शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता।

14. संसार में मूल्यों के ह्रास की चरम-सीमा अथवा धर्म-ग्लानि

जब सारी सृष्टि में विकार अपनी अन्तिम सीमा को पहुंच जाते हैं और सृष्टि में पापाचार, भ्रष्टाचार, अत्याचार बढ़ जाता है तब उस काल को ही ''धर्म-ग्लानि का समय'' कहा जाता है क्योंकि धर्म का अर्थ 'पवित्रता, शान्ति और दिव्य गुण' हैं। दिव्य गुणों तथा पवित्रता का अत्यन्त ह्रास अथवा प्राय:लोप हो जाने पर ही घर-परिवार नरकमय बन जाते हैं। तब संसार पर घोर अज्ञान-रात्रि छाई होती है। आज परिवार के उन चिह्नों को ही हम देख रहे हैं। अत: वर्तमान समय कलि के अन्त और सतयुग के प्रारम्भ का संगम समय है जबकि परमपिता परमात्मा **शिव** ने प्रजापिता **ब्रह्मा** के तन में अवतरित हो कर फिर से सतयुग का बीजारोपण किया है। अज्ञान की घोर रात्रि के समय अवतरण के कारण ही जन-जन आज तक शिवरात्रि मनाते चले आते हैं। अब इस रात्रि में जगने का समय है। परमपिता शिव कहते हैं कि आपके पास जो बुराइयाँ हैं, वह मुझे दे दो तो मैं आपको मुक्ति और जीवनमुक्ति का वरदान दूंगा अथवा 21 जन्मों के लिए स्वर्गिक पवित्रता-सुख-शान्ति की विरासत दूंगा। अत: हमारा कर्त्तव्य है कि हम ईश्वरीय आज्ञा को मानें। **हमारे परमपिता पवित्र हैं और हम अपवित्र हों, यह तो शोभा नहीं देता।** इसलिए अब हमें पवित्रता का व्रत लेते हुए, योग रूपी उपवास (उप-वास) करते हुए घर-परिवार को अच्छा बनाना है। उसके लिए ही पारिवारिक मूल्यों का या पारिवारिक जीवन जीने का यह कोर्स है। इसका पहला पाठ यह है कि हमें स्वयं को ज्योति बिन्दु आत्मा मानते हुए, देह-अभिमान को छोड़ना है क्योंकि देहाभिमान ही सभी पापों की जड़ है। अब हमें स्वयं को परमपवित्र, दु:ख-हर्त्ता, सुख-कर्त्ता शिव की सन्तान मानते हुए अपने पिता ही के समान पवित्र बनना है। घर-परिवार में रहते हुए हमें अपने जीवन को कमल-पुष्प के समान न्यारा और प्यारा बनाना है।

कुछेक प्रश्न

1. यह विश्व एक परिवार कैसे है और आत्मा-आत्मा भाई किस आधार पर हैं?
2. स्वर्ग की ऐसी क्या विशेषताएं हैं जिनके कारण घर-परिवार को स्वर्ग के समान बनाने के लिए कहा जाता है?
3. सभी पापों की जड़ क्या है तथा सभी विकारों का बीज क्या है?
4. काम, क्रोध और लोभ को नरक का द्वार क्यों कहा जाता है? नरक के बारे में आप क्या जानते और मानते हैं?
5 पारिवारिक मूल्यों का ह्रास कब से और किन कारणों से शुरु हुआ?
6. पवित्रता ही सुख-शान्ति की जननी कैसे है?
7. नर से श्री नारायण और नारी से श्री लक्ष्मी बनने या मनुष्य से देवता बनने की उक्ति क्यों प्रसिद्ध है?
8. शरीर से भिन्न आत्मा नामक सत्ता के अस्तित्व के क्या प्रमाण हैं? चार प्रमाण ऐसे बतायें जो आप को अकाट्य और शक्तिशाली लगते हों?
9. यह कैसे माना जाये कि जन्म कर्म और संस्कार ही के आधार पर होता है? क्या हम संसार में ऐसे कुछ अपवाद (Exceptions) देखते हैं जो कि कर्म-सिद्धान्त का उल्लंघन करते हों?
10. आत्मा का स्वरूप और परमात्मा का स्वरूप कैसा है? तथा क्या है? आत्मा इस सृष्टि मंच पर कहाँ से आई है?
11. सभी आत्माओं का परमात्मा से क्या सम्बन्ध है और उनका आपस में क्या सम्बन्ध है? ''वसुधैव कुटुम्बकं'' की उक्ति अथवा ''हिन्दु-मुस्लिम-सिक्ख-ईसाई, सभी आपस में भाई-भाई'' की उक्ति की क्या आधार-भूत मान्यता है?
12. 'धर्म-ग्लानि' का क्या अर्थ है? उस दशा में परिवारों की कैसी स्थिति होती है?
13. कलियुग और सतयुग को मिलाने वाले समय को क्या कहते हैं और उस छोटे-से युग में क्या विशेष वृत्तान्त होता है?
14. परमात्मा का गुणवाचक नाम क्या है, वह हमारे माता-पिता कैसे हैं और हमें क्या विरासत देते हैं? आत्माओं का ईश्वरीय जन्म सिद्ध अधिकार क्या है?
15. पतित-पावन परमात्मा आत्माओं को कब और कैसे 'पावन' करते हैं?

तीसरा पाठ

समायोजन, सहनशीलता, मधुरता, नम्रता, धीरज और परस्पर वार्तालाप

पिछले सत्र में ये विचार व्यक्त हुए थे कि आज घर-परिवार में जो विघटन हैं, उनका एक कारण है – समायोजन अथवा अनुरूपता (Adjustment) की कमी। हरेक व्यक्ति (1) अपने लिये ही सहूलियत और आराम चाहता है, (2) अपनी ही आवश्कयकताएं पूरी करना चाहता है, (3) अपनी ही कठिनाइयों को दूर करने की प्राथमिकता देता है, (4) अपनी ही पसन्द या इच्छा पूरी करना चाहता है और इस बहाव या **स्वार्थ-भाव** में वह (5) दूसरों की आवश्यकताओं, कठिनाइयों इत्यादि को महत्व नहीं देता। इसी कारण से नाराज़गी, अनबन और झगड़ा होता है। संगठन में रहने का यह तरीका तो नहीं है। दूसरों के साथ रहने में हमें कुछ अपनी उचित बात भी मनवानी होती है और कुछ दूसरों की भी विवेक-सम्मत बात का आदर करना पड़ता है। हम (6) **ईर्ष्या के वश** या अभिमान को ठेस लगते देखकर दूसरों की उचित बात भी न मानें तब घर-परिवार की गाड़ी कैसे चलेगी? यदि हम दूसरों की बात को भी कुछ मान्यता दें और अपनी बात के भी औचित्य को स्पष्ट कर के **साक्षी भाव अपना लें** तथा स्वयं को न्यारा कर दें तो हमारे सम्बन्धों में हल्कापन और स्नेह आयेगा और यदि इसकी बजाय हम हर अवसर पर अड़े रहें और खड़े रहें तो फिर **परिवार भी परीक्षा बन जायेगा या परेशानी का रूप ले लेगा**। अत: प्रश्न उठता है कि इस समायोजन या अनुरूपता नामक गुण को धारण करने के लिये हमें क्या करना चाहिये?

1. समायोजन

(i) सर्वप्रथम तो हमें यह सोचना चाहिये कि परिवार में तो हमारे सम्बन्ध हैं; सम्बन्धों को तो हमें निभाना पड़ता है क्योंकि सगे-सम्बन्धी समय पर काम भी आते हैं और सहायता भी करते हैं। जब हम परिवार में रहते हैं तो परिवार के लोग हमें समय पर सहयोग भी देते हैं; वे हमारे काम आते हैं। अत: यदि हम परिवार को छोड़ भी दें, सम्बन्धों को तोड़ भी दें, उनसे मुख मोड़ भी लें तो हमें किन्हीं अन्य के साथ अन्यान्य सम्बन्धों में रहेंगे। तब भी, अनुरूपता को तो अपनाना ही पड़ेगा। *यदि परिवार के सदस्यों में अनुरूपता नहीं होगी, तब तो सभी बिखर जायेंगे।* अत: यह सोच कर कि किसी-न-किसी प्रकार के संगठन में तो अवश्य रहना ही है और सम्बन्ध निभाना ही है, हम सम्बन्ध-विच्छेद की बजाय सम्बन्धों को दिव्य और अलौकिक बनाना है क्योंकि परमपिता शिव ने प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा समझाया है कि **न्यारा और प्यारा** रहना है। जैसे कमल-पुष्प, कमल-ककड़ी, कमल टोडा और अन्य सम्बन्धियों के संग रहते हुए भी उन से तथा जल से ऊपर उठकर रहता है, वैसे ही ज्ञानवान व्यक्ति को भी इस **संसार में रहते हुए उनसे न्यारा होकर रहना है।** जैसे एक गाड़ी में यात्रा करते हुए यात्री मिलकर यात्रा करते हैं और एक-दूसरे के साथ निभाते हुए अपने गन्तव्य पर पहुंच जाते हैं, वैसे ही ज्ञानवान व्यक्ति को चाहिये कि **इस जीवन-यात्रा में अपना कर्त्तव्य स्नेहपूर्वक निभाते हुए अपने पवित्रता-सुख-शान्ति रूपी लक्ष्य की ओर बढ़ता चले।**

अनुरूपता को धारण करने के लिये हम निम्नलिखित बातें सोचनी और करनी चाहिये :–

(ii) ये सब 'अपने' ही हैं

देखा गया है कि जहाँ एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को 'अपना' मानता है, वहाँ ही समायोजन हो जाता है। एक उदाहरण प्रसिद्ध है कि गाड़ी के एक डिब्बे (Coach) में बैठी हुई एक महिला ने प्लेटफ़ार्म पर खड़े एक वृद्ध व्यक्ति के अनुनय-विनय करने पर भी उसे डिब्बे में चढ़ने की स्वीकृति नहीं दी बल्कि कर्कश ध्वनि से कहती रही कि – 'अरे बुढ़े तुझे दिखाई नहीं देता; इसमें जगह कहाँ है? परन्तु जब उस नव-वधु को, जिसने घूंघट के कारण पहले अपने श्वसुर को नहीं देखा था और इसलिये नहीं पहचानती थी, अपने पति ने यह बताया कि – ''अरी, यह तो मेरे पिताजी अर्थात् तेरे श्वसुर हैं; क्या तू पगली है जो इन्हें रोक रही है'', तब तुरन्त यह समझकर कि यह तो '**अपने**' (श्वसुर) हैं, उसने उन्हें गाड़ी में चढ़ने दिया और बैठने की भी अच्छी-खासी जगह दी। इसी प्रकार, जब माता देखती है कि फलाँ मेरा **अपना ही** बेटा है, तब उसके नाज़-नख़रे, उसकी चंचलता इत्यादि को सहन कर लेती है।

(iii) झगड़ा करने से हानि ही होगी

यह भी बहुत लोगों का अनुभव है कि झगड़ा करने से तो दोनों की बदनामी होती है। लोग तो तमाशा देखते हैं। मान तो उन दोनों का नष्ट होता है जिनमें ऊंचे स्वर से कहा-सुनी होती है। कई शारीरिक रोग पैदा होते हैं, और अगर मामला पुलिस, न्यायाधीश, गांव के मुखिया, परिवार के चौधरी इत्यादि के पास जाये तो व्यक्ति और अधिक चर्चा का विषय बनता है तथा लोग टीका-टिप्पणी करते हैं या आग भड़काते हैं। अत: किसी भी सदस्य के साथ यदि समायोजन न होने पर उसकी शिकायत लगाई जाती है तो मनुष्यको पश्चाताप होता है या तो आग भड़कती है।

(iv) हम सुख-दाता की सन्तान हैं, हमें सुख-दाता होना चाहिये

हमने यह तो समझ ही लिया है कि हम सभी परमपिता परमात्मा की सन्तान हैं जो कि दु:ख-हर्त्ता और सुख-कर्त्ता माना गया है। तब ऐसे पिता की सन्तान होकर, हम यदि दूसरों के साथ समायोजन न करके, उन्हें दु:ख दें या अशान्ति फैलाएं तो यह शोभा नहीं देता। हमें तो चाहिये कि हम अपने परमपिता की तरह सभी को सुख दें।

(v) जो जैसा है, उसे वैसा ही जानकर व्यवहार करें

हमें चाहिये कि जैसे हम अन्य चीज़ों को ठीक रीति जानने का पुरुषार्थ करे और उस जानकारी के आधार पर उससे वैसा ही व्यवहार करें। ''वैसा ही व्यवहार'' करने का यह अर्थ नहीं है कि वह हमें तंग करता है तो हम भी उसे सताएं, बल्कि इसका भाव यह है कि हम उसे जानते-पहचानते हुए उसके संग में रहने की रीति-नीति सोच लें जिससे कि बात न बिगड़े और आग न भड़के बल्कि प्रीति बनी रहे। घर-परिवार में शान्ति और पवित्रता तथा प्रीति के लिये हमें अन्य निम्नलिखित बातें अपनानी चाहिये।

2. सहनशीलता

बहुत-सी समस्याएं ऐसी होती हैं कि यदि सहनशीलता रूपी गुण को अपनाया जाये तो सहज ही हल हो सकती हैं। प्राय: घरों में घोटाला है तो दूसरा भी हैंड ग्रेनेड (Hand Granade) की तरह फट पड़ता है और आग फैला देता है। दोनों ओर जब सहनशीलता को छोड़कर लोग बात करते हैं तो घर के दूसरे सदस्य भी एक या दूसरी ओर होकर उस झगड़े में शामिल हो जाते हैं। हर कोई धमकी देने लगता है और हरेक न्यायाधीश बनकर दूसरे की ग़लती बताता है। तब ऐसा लगता है कि घर में ही दंगा (riot) अथवा बलवा (फ़साद) हो गया है। इसकी बजाय यदि एक भी **सहनशीलता को अपनाता है तो वह आग को बुझाने या कन्ट्रोल करने वाले फ़ायर ब्रिगेड (Fire Brigade) का काम करता है।**

(i) यदि कोई (1) हमारी निन्दा करता है, (2) हमारे बारे में चुग़ली लगाता रहता है, (3) हमें डाँटता-डपटता रहता है, (4) हमारे कार्य के सफल होने में रुकावट डालता है, (5) हमने उसे बहुत सहयोग दिया और आज उसके आधार पर वह विशेष बनकर हमारा ही (6) अपमान करता है तो हमें ऐसी अप्रिय एवं खटकने वाली परिस्थितियों में समझना चाहिये कि यह सब हमारे **अपने किसी पूर्ण हिसाब-किताब ही के कारण होगा**। जबकि कारण के बिना कुछ होता नहीं है, तब अवश्य ही **हमारे अपने ही पिछले कर्मों का कुछ लेखा-जोखा रहा होगा**। अत: जबकि हमारी की हुई कुछेक भूलों का यह फल हमारे सामने आ रहा है तो हमें इसे सहन कर के समाप्त करना चाहिये।

(ii) इस संसार में **भांति-भांति के लोग** हैं। एक व्यक्ति दूसरे से नहीं मिलता। सभी के संस्कार भिन्न-भिन्न हैं। अत: यदि हम यह चाहें कि घर-परिवार के सभी व्यक्ति हमारी ही पसन्द के हों, उनके स्वभाव वैसे ही हों जैसे कि हम चाहते हैं, तब यह तो इस कलियुगी संसार में सम्भव ही नहीं है। अत: परिवार के सदस्यों के भिन्न-भिन्न संस्कार देखकर हमें उन्हें सहन करना चाहिये क्योंकि यदि इन्हें छोड़कर कहीं दूसरी जगह चले जायेंगे अथवा अन्य लोगों से सम्बन्ध रखेंगे तो भिन्न-भिन्न संस्कार तो वहाँ भी होंगे ही।

सहनशीलता को अपनाना हार मानने के जैसा नहीं है। सहन तो कोई हिम्मत वाला ही कर सकता है। इसलिये इस दिव्य गुण के साथ 'शक्ति' शब्द का प्रयोग करते हुए इसे 'सहन **शक्ति**' कहा जाता है। आध्यात्मिक अथवा नैतिक शक्ति वाला ही सहन कर सकता है और सहन करने से आत्मा की शक्ति बढ़ती है। अत: सहन न करना एक प्रकार से अपनी ही आध्यात्मिक शक्ति को बढ़ने से रोकने के समान है। इसमें तो अपनी ही हानि है।

सहन करने का यह अर्थ नहीं है कि मुख से न बोलें और हाथापाई भी न करें परन्तु मन में भले दु:खी होते रहें। सच्चे अर्थ में तो सहनशीलता यह है कि दूसरों के दुर्व्यवहार का हमारी मानसिक स्थिति पर कोई भी दु:खात्मक प्रभाव न पड़े; हम आनन्द और खुशी-मौज में रहें।

3. मधुरता को धारण करें

मधुर वाणी ऐसे ठण्डे पानी की तरह काम करती है जो कि क्रोध रूपी अग्नि को बुझा देती है। परिवार में यदि कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसका जल्दी ही मिज़ाज गर्म (Temper lose) हो

जाता हो और जो जल्दी ही उत्तेजित होकर अनुचित शब्द बोलने लगता हो, तो उससे मधुर बोलने से उसका पारा उतर जाता है। यदि दूसरा व्यक्ति भी इस समय गर्मी से बोलता है तो आग भड़कती है। मधुर बोलने में मनुष्य का कुछ भी खर्च तो नहीं होता परन्तु इससे दूसरे के पास हमारे वार्तालाप के बारे में कोई शिकायत करने की बात नहीं रह जाती और **बात ज्यादा बिगड़ती भी नहीं**। यदि समस्या सुधरे न भी सही तो हमारी वाणी कम-से-कम आग में ईंधन डालने का काम तो नहीं करती। इसलिये कहा गया है कि ''अगर गुड़ नहीं दे सकते तो कम-से-कम गुड़ जैसा मीठा तो बोलो।''

संसार में जो मीठा बोलने वाले लोग हैं, उनकी उपमा कोयल से की जाती है और जो शोर मचाते और अखड़ने वाली वाणी बोलते हैं, उनकी तुलना कौए से की जाती है। शिष्ट व्यक्ति को तो कोयल ही की तरह मीठा बोलना है। **वाणी ऐसी हो कि दूसरे अनुभव करें कि इसके मुख से तो फूल झड़ते अथवा मोती निकलते हैं।** वे उन्हें सुनने के लिये लालायित हों। वाणी रामायण-प्रसिद्ध 'मेघनाद' की वाणी की तरह उत्तेजित या भयभीत करने वाली या चुभने वाली न हो। ऐसी वाणी से तो अपने भी बेगाने बन जाते हैं और शत्रुता उत्पन्न होती है। ऐसी वाणी बन्दूक की गोली या तलवार की धार का काम करती है।

केवल वाणी ही मीठी नहीं बल्कि स्वभाव और कर्म भी मधुर होने चाहियें। इन से मनुष्य दूसरों के मन को जीत लेता है, शत्रुओं को भी मित्र बना लेता है और इससे उसकी अपनी मनोस्थिति भी शान्त रहती है। परिणाम स्वरूप वह सदा खुश रहता है और उसे सभी की दुआएं मिलती हैं। गुस्सा करने वाले का मन भी उसकी मधुरता, मुस्कान और मौन के आगे हथियार डाल देता है तथा उसके प्रति उसका प्यार और भी अधिक बढ़ जाता है। **मन की मधुरता का भाव यह है कि सभी के प्रति शुभ भावना और शुभ कामना हो और किसी के प्रति ईर्ष्या, द्वेष, आक्रोश इत्यादि के कारण मन में कटुता न हो।**

किसी ने इस विषय में शोध कार्य किया कि संसार में सबसे अधिक कड़वी चीज़ क्या है? इस शोध के फलस्वरूप, वह इस निर्णय पर पहुँचा कि सबसे अधिक कडुवा मनुष्य का कटु वचन है। मनुष्य का संसार में जो छोटा-सा एक जीवन है, उसमें मधुरता की बजाय कटुता को लिये रहना तो गोया जीवन में काँटे बोना है।

लोग प्राय: इस विषय पर विचार किया करते हैं कि परस्पर विवाद, अनबन या संघर्ष (Conflict) को कैसे हल (Resolve) किया जाये। इस विषय में अनेक चर्चाएं हुई हैं और कई विधियाँ सोची गयी हैं परन्तु इसमें 'मधुरता' का स्थान भी कम महत्व का नहीं है। मधुरता से संघर्ष का अन्त भले ही न होता हो, वह कुछ हल्का तो हो ही जाता है। **मधुरता एक ऐसा गुण है जिससे परिवार और संगठन बने रहते हैं।**

4. नम्रता अथवा झुकना

इस बात का भी प्राय: सभी को अनुभव है कि यदि एक व्यक्ति नम्रता को धारण करता है तो अभिमान करने वाला दूसरा व्यक्ति भी कुछ आदरभाव करता है। तब समायोजन की स्थिति आ जाती है। बच्चों को एक रोचक आख्यान पढ़ाया जाता है जिसमें बताया गया है कि एक नदी

पर एक पुल थी जिसकी चौड़ाई बहुत-ही कम थी। उस पर एक बकरी एक ओर से जा रही थी और दूसरी उसके सामने वाली तरफ़ से आ रही थी। दोनों में से कोई भी पीछे हटने को तैयार नहीं थी। वे दोनों ही नदी में गिरेंगी और उन्हें चोटें भी आयेंगी। अत: उनमें से एक जो अधिक नम्र थी, वह पुल पर ही लेट गई और उसने दूसरी को कहा कि–''आप मेरे ऊपर से होकर चले जाईये। दूसरी ने ऐसा ही किया। जब वह चली गयी तो पहली भी उठ खड़ी हुई और वह भी अपनी मंज़िल की ओर चल पड़ी। इस प्रकार दोनों के समायोजन से अथवा एक की नम्रता या उसके झुकने से समस्या का हल हो गया। लड़ाई-झगड़ा भी न हुआ, शरीर को घाव भी न हुआ, वे नदी में भी नहीं गिरी, अपने गन्तव्य पर भी जा पहुंचीं, उनकी दोस्ती भी बनी रही तथा दुश्मनी भी न हुई।

प्राय: परस्पर टकराव का मुख्य या मूल कारण अभिमान होता है। अभिमानी व्यक्ति के व्यवहार से दूसरे के मन को चोट लगती है। इसकी बजाए जो योग्यताएं, शक्तियाँ और विशेषताएं होने के बावजूद भी **नम्र स्वभाव का होता है, वह लोक-प्रिय होता है।** उसकी नम्रता के आगे दूसरे भी नतमस्तक होते हैं अथवा इसका गुण-गान करते हैं। अभिमानी व्यक्ति को वे बाहर से या ऊपरी रीति भले ही सन्मान देते हों, नम्र को तो वे हृदय से प्यार करते हैं और मन की गहराई से उसे महान समझते हैं। स्थूल व्यवहार में भी हम देखते हैं कि जब कोई व्यक्ति किसी के आगे झुकता है, उसके चरण-स्पर्श करने के लिये वन्दना करता है, तब वरिष्ठ व्यक्ति भी उसका हाथ थामने या उसे झुकने से रोकने के लिये स्वयं झुकता है। अत: यह स्वयं भगवान द्वारा सुझाये गये तथा समझाये गये नीति वचन हैं कि – ''**झुकना ही झुकाना है**''। झुकना कोई कमजोरी का प्रतीक नहीं है बल्कि यह तो महानता का परिचायक है।

जब गोली चल रही होती है तो उस अवसर के बारे में जानकर लोग कहते हैं कि मनुष्य को ज़मीन पर लेट जाना चाहिये। इससे वह व्यक्ति गोली लगने से बच जाता है। उस समय छाती कसकर खड़े होने की बजाय स्वत: ही धराशयी हो जाना बुद्धिमता है। इससे मनुष्य का अनमोल जीवन बच जाता है। जान-बूझ कर जीवन गंवाना कोई महानता नहीं है। मनुष्य यदि जीवन भी देता है तो किसी उच्च लक्ष्य की प्राप्ति या सर्व के भले के लिये ही ऐसा करे। इस प्रकार, **अभिमान तो एक प्रकार से सीना तानने की तरह है। इससे एक-न-एक दिन मनुष्य अपनी इज्ज़त भी गंवा देता है,** और सभी से शत्रुता मोल ले लेता है। स्वमान और सम्मान के बिना जीवन का क्या लाभ? अपमान का जीवन, जिसमें मनुष्य शत्रुओं से घिरा हो और जिसके कारण मनुष्य की नींद भी हराम हो, किस काम का जीवन है? वह तो मृत्यु से भी अधिक कष्टकारक होता है। **अत: हमें यह समझना चाहिये कि नम्रता में ही हमारी स्थूल और सूक्ष्म सुरक्षा (Safety) है।**

जो ज़ीरो (Zero) बनता है, वह 'हीरो' (Hero) बनता है। अत: यह नहीं समझना चाहिये कि नम्रता वाले व्यक्ति को लोग कुछ भी नहीं समझते, अर्थात् 'जीरो' समझते हैं। वास्तव में लोग उसके सामने यदि उसकी नम्रता की प्रशंसा न भी करते हों तो उसकी पीठ के पीछे तो कहते हैं कि-''यह तो 'देवता' है योग्य होने के बावजूद भी इसमें अभिमान नहीं।''

अभिमानी व्यक्ति के तो हर दिन कई टकराव होते हैं। उसे अभिमान-जनित अपनी छवि को

बनाये रखने के लिये कई उलट-फेर करने पड़ते हैं। इस प्रकार, उसके ग़लत कामों से पेचीदगियाँ पैदा होती जाती हैं और झगड़े सुलझने की बजाय उलझते जाते हैं। इसकी तुलना में नम्रता वाले व्यक्ति को और अधिक ग़लत काम तो नहीं करने पड़ते। इससे **उसका मन हल्का रहता है।** उसके सिर पर और ज्यादा हथकण्डों का बोझ नहीं चढ़ता। इस प्रकार, नम्रता ही सुखमय जीवन की कला है। इससे परिवार के दूसरे सदस्यों का उससे ज़ोरदार या अधिक गम्भीर संघर्ष नहीं होता और ज्यादा गर्मी भी नहीं होती।

5. धीरज

घर-परिवार में जब-कभी कोई अप्रिय बातचीत होती है तो कुछ सदस्य कुछ समय चुप न साध कर तुरन्त बोल उठते हैं। **वे मौन के महत्व को नहीं समझते और, यदि समझते भी हों तो मन को कुछ समय प्रेक्टीकल रीति से मौन में नहीं रख सकते। दूसरे शब्दों में, वे जल्दी से ही धीरज खो बैठते हैं।** इससे वातावरण बिगड़ जाता है।

धीरज का सम्बन्ध सहनशीलता से है। सहन न कर पाने पर ही धैर्य टूटता है और यों भी कह सकते हैं कि धैर्य टूटने पर सहनशीलता भी टूट जाती है। **अत: धीरज कई गुणों का आधार अथवा साथी है। यह हमें कई विघ्नों से बचाता है। यह हमारे मन की स्थिति को बनाये रखता है। यह आशा के दीप जलाए रखता है।**

जैसे सहन करना एक **शक्ति** होने से ही संभव होता है और जैसे सहन करने से मनुष्य का शील बना रहता है, वैसे ही धीरज भी आत्मिक शक्ति और चारित्रिक महानता से ही संभव होता है। कमज़ोर आत्मा काफ़ी देर तक धीरज नहीं कर सकती। अत: धीरज का गुण धारण करने के लिये अन्य कई गुणों की धारणा चाहिये तथा योग बल द्वारा आत्मिक स्थिति को दृढ़ करना जरूरी है। देहाभिमानी व्यक्ति अपने (i) बाहुबल, (ii) धनबल (iii) मित्रबल (iv) प्रतिष्ठा-बल, इत्यादि के आधार पर जल्दी से आवेश में आ जाता हैं और धमकी देने लगता, लड़ने-झगड़ने को तैयार हो जाता और ज्ञानी के लक्षणों से रहित बोल बोलने लगता है। अत: हमें चाहिये कि देहाभिमान को छोड़कर, झूठे बल के नशे से मुख मोड़ कर हम धीरज धारण करके शान्त, शीतल, मौन, मधुर और मुस्कुराहट वाले बने रहें और मित्रता भाव को न छोड़ें।

देखा गया है कि जब कोई व्यक्ति नकारात्मक बातों को इकट्ठा करता रहता है तब उसका मन उन हानिकारक बातों से भर जाता है और वह भावावेश उसमें आ जाता है और धीरज तथा सहनशीलता छोड़ देता है। अन्यश्च जब व्यक्ति यह भूल जाता है कि आज नहीं तो कल इस संसार में न्याय जरूर होगा और सत्यता प्राप्त हो कर रहेगी, तभी उसका धीरज भी टूटता है और वह सहनशीलता का गुण भी छोड़ देता है। **अत: हमें चाहिये कि हम बीती बातों को जो कि नकारात्मक हैं इकट्ठी न करती जायें बल्कि परस्पर वार्तालाप करके या योगबल द्वारा** उससे अपना मन खाली कर दें। वरना पारिवारिक जीवन में तनाव आयेगा ही।

6. परस्पर वार्तालाप (Communication)

घर-परिवार में कई लोग परस्पर, एक-दूसरे से खुलकर बात नहीं करते, न उनमें हंसी-विनोद की वार्ता होती है, न गुण चर्चा कर सकते हैं। यदि उन्हें एक-दूसरे की कोई बात ठीक न लगती

हो तो भी वे प्रेम और सद्भावना से बात नहीं करते। वे बात करने से डरते या झेंपते हैं। **काफ़ी समय तक खुलकर बात न होने से संकोच और भी बढ़ जाता है और ग़लतफ़हमियाँ भी बढ़ती जाती हैं। उन ग़लतफ़हमियों के आधार पर मिथ्या-अनुमान प्रारम्भ हो जाते हैं और उससे नाराज़गी, द्वेष, अनबन इत्यादि और अधिक होते हैं।** इस प्रकार यह एक कुचक्र (Vicious circle) सा बन जाता है जिसे काटना मुश्किल हो जाता है। एक बार इस दलदल में फंस जाने से इससे बाहर निकलना मुश्किल हो जाता है। इसलिये **बेहतर यह है कि (1) स्नेह, (2) नम्रता, (3) मधुरता से और सम्मानपूर्वक परस्पर बात कर ली जाये।** इससे यदि भ्रान्तियों का पूरी तरह निवारण नहीं होगा तो कम-से-कम उसमें कुछ हल्कापन आयेगा और परस्पर एक मानसिक मेल (Mental link) तो बना ही रहेगा और धीरे-धीरे वार्तालाप से एक-दूसरे के समीप आते जायेंगे और एक समय आने पर स्नेह और सौहार्द भी आ जाएगा।

यदि यह सोचा जाये कि दोनों का मन भ्रान्तियों से भरा होने के कारण खुलकर बातचीत नहीं हो सकती और यह सन्देह बना रहता है कि पता नहीं दूसरा व्यक्ति किस चालाकी से क्या बात कर रहा है और कि बात करते समय भरे मन के कारण, ऐसे शब्द भी निकल सकते हैं कि बात और ही बिगड़ जाये तो इस विषय में मन में यह संकल्प तो दृढ़ करना ही पड़ेगा कि बात अधिक तो बिल्कुल बढ़ाना ही नहीं है। तब यदि दूसरा व्यक्ति आवेश में कटु शब्द बोलता है, आक्षेप लगाता है, अभद्रता से व्यवहार करता है, डराता-धमकाता है तो मन को काबू करके वह दवाई के कड़ुवे घूंट की तरह पी जाने हैं क्योंकि उससे दूसरे व्यक्ति का मन हल्का हो जायेगा और बात भी हल्की तो हो ही जायेगी। फिर भी यदि ये देखा जाये कि बात बिगड़ने लगी है तो कम-से-कम इतना तो समझौता कर ही लेना चाहिये कि कुछ दिनों के बाद फिर बातचीत करेंगे और ये भी कह देना चाहिये कि मेरे मन का कोई अशुभ दृष्टिकोण नहीं है और मैं तो शान्ति सद्भावना बनाये रखना चाहता हूं और जो मेरी ग़लती हो उसे ठीक करना चाहता हूँ।'' इस प्रकार वार्तालाप की शुरूआत तो की जा सकती है। धीरे-धीरे रुकावट मिट जायेगी, वर्ना बात ही न करने से तो बतंगड़ बन जायेगा।

चर्चा के लिये कुछ प्रश्न

1. कई बार हम में इसलिये समायोजन, सहनशीलता और धीरज की धारणा नहीं होती कि हम देखते हैं कि दूसरा व्यक्ति तो थोड़ा भी झुकता, बदलता या खेद प्रगट (Sorry!) करता नहीं है। यह बात देखकर हम सोचते हैं कि वह नहीं झुकता तो हम क्यों झुकें? क्या ऐसा सोचना हमारे लिये उचित और श्रेयस्कर है? यदि नहीं तो हम ऐसे मौके पर क्या सोचे? क्या हम यह सोचें कि हमारे झुकने में हम में नम्रता का गुण विकसित होगा; उसके कटु वचन न छोड़ने पर भी यदि हम मधुर बनें रहेंगे तो हमारी मधुरता स्थिर और स्थायी हो जायेगी और **सहन** करने से हमारी अपनी ही शक्ति तथा अपना ही शील भी बढेगा?
2. यदि हम स्वयं को परिवर्तित नहीं करते और पहले दूसरे को परिवर्तित देखना चाहते हैं और इस कारण अपना भी परिवर्तन रोके रखते हैं तो इसमें हानि किसकी होगी? क्या दूसरे व्यक्ति यह जिद्द करना कि **पहले वह** परिवर्तित हो या वह भी तो परिवर्तित हो, हमारे लिये

उचित या लाभकारी है?

3. यदि परिवार का कोई भी सदस्य हम से दुर्व्यवहार करता है तो हम यह कैसे मानें कि हमारे ही किन्हीं **पिछले कर्मों** का यह फल है? यह क्यों न माना जाय कि वह व्यक्ति वर्तमान में नये कर्म कर रहा है? क्या पिछले कर्मों और वर्तमान कर्मों में भेद जानने के लिये कोई चिह्न हैं?

4. कहा गया है कि ''दाना ख़ाक में मिलकर गुलज़ार होता है''– इस उक्ति के अनुसार हमारे ''खाक में मिलने'' और ''गुले गुलज़ार'' बनने का क्या अर्थ और क्या स्वरूप है? हम ज़ीरो (Zero) कैसे बनें ताकि हीरो (Hero) बन सकें? ''जीते-जी मरने'' का क्या भाव है; हम मरजीवा कैसे बनें?

5. ऐसा माना जाता है कि जिससे '**ईर्ष्या**' हो, उसकी थोड़ी भी खराब आदत बहुत बूरी लगती है और जिससे **प्रीति** हो, उसकी बहुत बुरी बात भी तिनके के समान हल्की या मामूली लगती है। भारी लगने पर उसे सहन करना कठिन हो जाता है। इस प्रकार, **ईर्ष्या का सम्बन्ध-सहनशीलता की कमी से** होने के कारण यदि ईर्ष्या से मुक्ति-प्राप्त करना चाहते हैं तो क्या करें और कैसे करें?

6. क्या **मधुर** बोलने का भाव इतना मात्र है कि हमें शब्द युक्तियुक्त, सभ्यता-युक्त, सन्मान-युक्त और मिठास-युक्त बोलने चाहियें या इस का अर्थ यह है कि दूसरे के मन को भी वे राहत या आराम पहुचायें? (ii) उसकी खुशी बढ़ायें, (iii) उसमें दिव्य गुणों का उत्कर्ष करने के लिये उसका उमंग बढ़ायें? क्या मीठे शब्द बोलने वाले किसी व्यक्ति के व्यवहार से यदि अभिमान दिखता हो तो हम उसे 'मधुर' कहेंगे या अन्य कुछ?

7. क्या 'मधुरता' शब्द में 'मीठी दृष्टि, मीठी वृत्ति, और स्नेह-सहयोग की भावना भी छिपी होती है या मधुरता के बल मुख द्वारा मीठे शब्दों ही के प्रयोग का वाचक है?

8. यदि हम कुछ भ्रान्तियों (misunderstandings) को दूर करने के लिये किसी से बात करना चाहें और वह हमारे इस सुझाव को ही यह समझने लगे कि हम अपनी ग़लती मान रहे हैं तो क्या किया जाय?

   (ii) यदि हम बातचीत करें और वह बात के दौरान में भी अपमानजनक रीति से व्यवहार करे तो क्या किया जाय?

   (iii) यदि किसी का स्वभाव-संस्कार ही ऐसा हो कि हमारा अपना मन भी उससे बात करने का न करे, तब क्या किया जाय?

   (iv) यदि हम ऐसे व्यक्ति से एक बार बात कर भी लें तो भी हमारे तथा उसके स्वभाव-संस्कार में बहुत अन्तर होने के कारण फिर से हम उससे बातचीत का सिलसिला जोड़े रखना चाहें, तब क्या किया जाय?

9. अगर देह-अभिमान ही सभी बुराइयों का मूल है, तब हम अन्य रीति-नीति या गुणों-साधनों को अपनाने की बजाय मौन रहने और योगाभ्यास ही में मस्त रहने का पुरुषार्थ क्यों न करें?

(10) समायोजन, सहनशीलता, मधुरता, नम्रता, धीरज और परस्पर बातचीत करने की नीति के बारे में आपसे जो प्रेक्टीकल अनुभव हैं, उन वृत्तान्तों का संक्षिप्त वर्णन करें।

(ii) क्या आपने अपने जीवन में हुए वृत्तान्तों द्वारा यह अनुभव किया कि इन पारिवारिक मूल्यों को अपनाने से ही परिवार भी सुख-शान्तिमय बनते हैं तथा स्वयं का भी आध्यात्मिक विकास होता है?

(11) मौन रहने, कम बोलने, धीरे बोलने और स्नेह करते रहने से स्थिति में कैसे सुधार आता है?

(12) क्या हमें इस बात का अनुभव है कि सहनशीलता का सम्बन्ध निम्नलिखित से है :–

(i) **सन्तुष्टता से**, अर्थात् यदि हम स्वयं से सन्तुष्ट होंगे तो सहन करना सहज होगा।

(ii) **प्राप्ति की आशा से**, अर्थात् यदि हम यह महसूस करेंगे कि सहन करने से फायदा बहुत है। उदाहरण के तौर पर देश की स्वतन्त्रता के संग्राम में स्वतन्त्रता-सेनानियों ने बहुत-कुछ सहन किया क्योंकि उन्हें यह विश्वास था कि देश को इससे प्राप्ति बहुत बड़ी होगी।

(13) क्या हम ऐसा मानते हैं कि हमारी सहनशीलता निम्नलिखित प्रकार की न हो?

(i) ऐसा न हो कि आहें भरकर, गहरी और लम्बी सांस लेकर हम कहते रहें कि हमने सहन किया।

(ii) हम गिनती करते रहें और धमकी न देते रहें कि हमने इस व्यक्ति की बात को इतनी बार सहन किया है; और कोई कर के तो दिखाये? अथवा यदि हमारे स्थान पर कोई और होता तो वह भाग गया होता या वह इतना समय न चल पाता।

(iii) हम किसी को ऐहसान न जतलाते रहें कि हमने आपकी वजह से इतनी बार और इतना अधिक सहन किया।

(iv) अपनी सहनशीलता का वर्णन ऐसी रीति से न करें कि जिससे ऐसा लगने लगे कि हम उन पर इल्जाम लगा रहे हैं (दोष आरोपित कर रहे हैं) जिनके व्यवहार को हमने सहन किया है।

(v) सहन करने पर हम ऐसा न कहें कि हमने इतना ऐहसान किया और सहन किया परन्तु अब हम अधिक सहन नहीं करेंगे।

(14) क्या प्रश्न नं. 13 में दी हुई बातें अधिक और अत्यन्त कठिन लगती हैं? यदि हाँ तो आप बतायें कि इनकी बजाय क्या किया जाय?

सायंकालीन सत्र में इस विषय पर तथा ऊपर दिये हुए और अन्य सम्बन्धित प्रश्नों पर कार्यशालाएं होंगी जिनमें थोड़े-थोड़े व्यक्ति होंगे।

कर्त्तव्य एवं अधिकार का तथा स्नेह, सहयोग एवं प्रोत्साहन का औचित्य तथा मिथ्या अनुमान, जोश, रोब और प्रभुत्व जमाने की आदतें

आज परिवार और संसार के सारे रगड़े-झगड़े प्राय: (1) **कर्त्तव्य, अधिकार और सम्बन्ध** के तथा (2) समय और (3) **वातावरण** के उचित या अनुकूल न होने के कारण हैं। उदाहरण के तौर पर, आज एक स्थान पर एक व्यक्ति किसी को डांट रहा है कि **फ़लाँ कार्य करना तो आपका कर्त्तव्य था**, तब आपने उसे किया क्यों नहीं? दूसरा व्यक्ति ऊंचे स्वर से उसका उत्तर देते हुए कह रहा है कि वह मेरा कर्त्तव्य या मेरी ड्यूटी (duty) नहीं थी, कौन कहता है कि उस कार्य को करना मेरा **कर्त्तव्य** था? इसी प्रकार, एक व्यक्ति दूसरे से कह रहा है कि –''आप क्यों इस कार्य को करने के लिये मुझे कह रहे हैं? यह मुझे करना है– ऐसा कहने का **अधिकार** आपको किसने दिया है? आप कौन होते हैं यह कहने वाले? आपका क्या मतलब? आपका क्या **अधिकार** है?''

इस प्रकार परिवारों में भी कर्त्तव्य और अधिकार के बारे में झगड़े होते हैं। एक व्यक्ति दूसरे को कहता है कि–''आप इसके लिये डॉक्टर से दवाई और बाज़ार से दूध और सब्ज़ी क्यों नहीं लाये? दूसरा कहता है कि ये सब मेरी ड्यूटी थोड़े ही है? क्या ये सब मेरे ही **कर्त्तव्य** हैं?'' साथ में वह यह भी कह देता है कि आप कौन होते हैं पूछने वाले? आप कोई मेरे बॉस (Boss) या 'सर' (Sir) हैं? आपको किसने **अधिकार** दिया है?

एक अध्यापक शिक्षा अधिकारियों को कह रहा है कि – ''बच्चों को अनुशासनबद्ध करने का कर्त्तव्य तो आपने मुझे दिया है परन्तु इसके लिये बच्चों को यदि झाड़-झपट या डंडा-थप्पड़ लगाना पड़े तो उसके लिये **अधिकार** भी तो दीजिए वर्ना मैं बच्चों से अनुशासन पालन कराने का कर्त्तव्य अथवा यह ड्यूटी पूरी नहीं कर सकता हूं।'' इसके प्रत्युत्तर में शिक्षा शास्त्री और शिक्षा-अधिकारी कहते हैं कि–बच्चों को डंडा-थप्पड़ मारने का **अधिकार** हम आपको नहीं दे सकते। उन्हें डांटने-डपटने का **अधिकार** भी आपको नहीं है। आप उन्हें समझाने की कोशिश कीजिए। कुछ इसी प्रकार की बात घर में बाप-बेटे का झगड़ा होने पर माँ और बाप के बीच भी होती है।

हम यह भी देखते हैं कि कोई **मानवीय अधिकारों** (Human Rights) की बात कर रहा है तो कोई **नागरिक अधिकारों** (Citizenship Rights) की। अन्य कोई एक सभा के सदस्य होने के नाते किसी को उसके **कर्त्तव्य** (duties) बता रहा है और साथ-साथ उसके **अधिकार** भी समझा रहा है। ऐसे ही परिवार में भी हरेक सदस्य के कुछ कर्त्तव्य और कुछ अधिकार होते हैं। इन्हीं से उसके व्यवहार की चर्चा होती है और एक व्यक्ति रुष्ट होकर दूसरे को कहता है–''आप तो केवल **अधिकार** ही माँगते हो, **कर्त्तव्य-कार्य** तो कुछ करते नहीं हो।''

घर-परिवार में भी हरेक के अपने-अपने **कर्त्तव्य** और **अधिकार** होते हैं। उदाहरण के तौर पर माता होने के नाते एक महिला के अपने बच्चों के प्रति कुछ **कर्त्तव्य** भी होते हैं और बच्चों पर उसके कुछ **अधिकार** भी। इसी महिला के अपने पति के साथ भी पत्नी-पति के सम्बन्ध से कुछ **कर्त्तव्य** और **अधिकार** जुड़े हुए हैं। इसी महिला के अपनी माता या अपने बहन-भाइयों के प्रति कुछ कर्त्तव्य और अधिकार माने जाते हैं।

कर्त्तव्य और अधिकार परस्पर सम्बन्ध पर आधारित

परन्तु हमें यह याद रखना चाहिये कि **इन सभी कर्त्तव्यों और अधिकारों का मूल आधार तो सम्बन्ध ही हैं।** सम्बन्ध बदलने से कर्त्तव्य और अधिकार भी बदल जाते हैं। परिवार में चूंकि हरेक का हर दूसरे व्यक्ति से अलग-अलग सम्बन्ध हैं, अत: उन सम्बन्धों के आधार पर उनके कर्त्तव्य और अधिकार भी अलग-अलग हैं। उसी को लेकर कई बार झगड़े हो जाते हैं। वो झगड़े तभी होते हैं जब कर्त्तव्य, अधिकार या सम्बन्ध **उचित** नहीं होते।

(ii) औचित्य

मान लीजिए कि किसी के किसी अन्य से सम्बन्धानुसार अधिकार या कर्त्तव्य तो बनते नहीं परन्तु वह उन्हें बनाये बैठा है तो उसके बारे में परिवार के दूसरे सदस्य आपत्ति (Objection) करते हैं और **नाराज़गी** या **मन-मुटाव** होता है। जैसे दफ़्तर (Office) में कोई क्लर्क (clerk) अपने ऊपर के गज़ेटिड अफ़सर (Gazetted Officer) के अधिकारों का प्रयोग करने लगे तो उस अफ़सर को, प्रशासन विभाग (Administration) को तथा अन्य कार्य करने वाले अन्य लोगों (Collegues) को भी इस पर आपत्ति होगी। वे कहेंगे कि यह **अनुचित** है। परिवार में भी यदि छोटा भाई पिता की तरह या बड़े भाई की तरह बात करने लगे तो यह बात दूसरे भाइयों-बहनों को अखड़ती है। इसलिये, कर्त्तव्यों और अधिकारों का **औचित्य** (Proprietry) जानना और उसका पालन करना ज़रूरी है।

उचित क्या है, अनुचित क्या है?–इस प्रश्न को लेकर ही नियम, मर्यादाएं, विधि-विधान इत्यादि बने हुए हैं। व्यवहार विज्ञान (Science of Behaviour) भी इसकी चर्चा करता है। धर्माचार्य भी इसके बारे में उपदेश देते हैं। उदाहरण के तौर पर, बच्चों का बड़ों से ठीक तरह अर्थात् सम्मान से न बोलना और बड़ों का छोटों को मार-पीट करना **उचित नहीं** है। जो व्यवहार के बारे में उचित-अनुचित को समझता है, उसे ही 'समझदार' कहा जाता है और जो नहीं समझता है, उसे 'बे-समझ' माना जाता है।

उचित-अनुचित का प्रश्न केवल इसी बात से नहीं जुटा है कि मुझे क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये बल्कि इस बात से भी जुटा है कि उसे करने का **तरीका** या उसकी **विधि** भी ठीक है या नहीं। उदाहरण के तौर पर एक प्रश्न तो यह है कि मुझे अपने से वरिष्ठ व्यक्ति से फलां बात करनी चाहिये या नहीं करनी चाहिये परन्तु दूसरा प्रश्न यह है कि यदि करनी चाहिये तो किस **रीति** से अथवा किस **विधि** से करनी चाहिये। इस प्रकार (i) **शिष्टता**, (ii) **सभ्यता**, (iii) **भद्रता**, (iv) **परम्परा**, (v) बड़े छोटे के **नाते** (Protocol), (vi) **नीति**

इत्यादि का भी ख्याल रखना चाहिये। इन्हीं में हमारे **तौर-तरीके** (Manners) भी सम्मिलित हैं। कहीं हम **आग्रह** कर सकते हैं, कहीं **अनुरोध**, कहीं हम **निवेदन** कर सकते हैं, कहीं **प्रार्थना**, कहीं हम **प्रस्ताव** कर सकते हैं तो कहीं **सुझाव**, कहीं **फ़रमाइस** या **आज्ञा** दे सकते हैं तो कहीं **अनुनय-विनय** कर सकते हैं। ये सब भी **औचित्य** में सम्मिलित हैं। कहीं हम **सेवक के स्थान पर** होते हैं तो कहीं **मालिक या बालक के स्थान पर।**

(iii) कर्त्तव्य का सम्बन्ध है–स्थान, समय और परिस्थिति से

कर्त्तव्य का सम्बन्ध (i) **स्थान**, (ii) **समय** और (iii) **परिस्थिति** से भी होता है। उदाहरण के तौर पर एक व्यक्ति अपने दरबार में राजा है या न्यायालय में न्यायाधीश है परन्तु घर में तो पिता, भाई या पति है और दोस्तों के साथ दोस्त है। अत: **स्थान**, **परिस्थिति** और **सम्बन्ध** के आधार पर उसका कर्त्तव्य तथा उसके अधिकार बदल जायेंगे और उनका उचित या अनुचित होना भी स्थान, समय, परिस्थिति तथा सम्बन्ध पर निर्भर करेगा।

उदाहरण के तौर पर, मान लीजिए कि किन्हीं भाइयों में जायदाद (पैतृक सम्पत्ति) का बटवारा काफ़ी पहले से हो चुका है और वे चिरकाल से अलग-अलग रहते हैं। परन्तु यदि इनमें से एक भाई अपना सारा पैसा शराब और जुए इत्यादि की बुरी आदतों के कारण गंवा चुका है और अब सख्त बीमार है तथा उसके पास दवा के लिये भी पैसे नहीं हैं, तो यद्यपि अन्य परिस्थितियों अथवा अवसरों पर दूसरे भाई का कोई **कर्त्तव्य** नहीं बनता परन्तु अब जबकि दूसरे भाई के पास दवा के लिये भी धन नहीं है और उसके जीवन-मृत्यु का प्रश्न है, तब प्रचलित मर्यादा के अनुसार तो उसका यह तो **कर्त्तव्य** बनता ही है कि वह उसके लिये दवा ला दे।

इसी प्रकार, यद्यपि यह प्रचलित मर्यादा है कि पुरुष इस-उस नारी को हाथ न लगाये परन्तु यदि कोई नारी ठोकर खा कर या दुर्घटनाग्रस्त होकर सड़क पर गिर गई है और उसका रक्त बहता जा रहा है और उसे वहाँ से उठाने के लिये यदि वह स्पर्श करता है, तब तो **अनुचित** नहीं है। इस परिस्थिति, स्थान और समय के बारे में तो सभी कहेंगे कि उस नारी को उठाना उसका **कर्त्तव्य** है। इस प्रकार, कर्त्तव्य सदा स्थिर नहीं रहता बल्कि पूर्वोक्त कारणों से अर्थात् (i) सम्बन्ध, (ii) परिस्थिति, (iii) समय इत्यादि के कारण बदलता रहता है।

लौकिक को अलौकिक बनाना हमारा कर्त्तव्य है

कर्त्तव्य, अधिकार और सम्बन्ध की जो चर्चा हमने की है और परिस्थिति, समय, स्थान इत्यादि के बारे में भी जो-कुछ कहा है, अब उसे हम यदि ज्ञान-दृष्टि से देखें तो प्रश्न उठता है कि, अब हमें क्या करना है? हमने दूसरे पाठ में ही वर्तमान समय के बारे में कहा था कि अब समय '**पुरुषोत्तम संगमयुग**' का है जिसे ही ''ब्रह्ममुहूर्त्त' या 'अमृतवेला' भी कहा गया है। यह ऐसा समय है जब हमें आत्मा और परमात्मा की युक्ति-सम्मत पहचान मिलती है और हमें ज्ञान, सहज राजयोग तथा दिव्य गुणों की धारणा द्वारा 'मनुष्य से देवता' अथवा '**नर से श्री नारायण और नारी से श्री लक्ष्मी**' बनने का पुरुषार्थ करना चाहिये। अब हमें पिछले कर्मों का खाता चुकता या समाप्त करना चाहिये और देहधारियों के साथ **नया कर्म-खाता भी नहीं खोलना चाहिये।** अब

कल्याणकारी परमपिता शिव स्वयं आकर पतित से पावन बना रहे हैं और वह तो हमारे परमपिता, परम माता, परम शिक्षक, परम सद्गुरु, परम सखा भी हैं। **अत: अब हमें उनके साथ सर्व आत्मिक नाते जोड़ने चाहियें।** अब परिवार के सभी सदस्यों के साथ हमारा जो देह का नाता है, उसके अतिरिक्त हमें **आत्मा-आत्मा भाई-भाई का नाता** भी जानना चाहिये तथा उसे व्यवहार में लाना चाहिये। इसलिये अब हमें अपने **कर्मों को केवल लौकिक (दैहिक) सम्बन्ध को सामने न रख कर अलौकिक (आत्मिक) बनाना चाहिये।**

सम्बन्धों को अलौकिक बनाने का अर्थ

दूसरे पाठ में बताया गया था कि हम सभी आत्माएं हैं, ज्योति बिन्दु हैं, अनादि और अविनाशी हैं और अपने वास्तविक स्वरूप में शुद्ध और शान्त हैं तथा परमपिता परमात्मा की अमर सन्तान हैं। यह भी स्पष्ट किया गया था कि इस दृष्टिकोण से यह विश्व एक विराट नाटक भी है और यह वसुधा एक परिवार भी है और सभी आत्माएं परस्पर **भाई-भाई** हैं अत: अब जबकि हमें यह अपना **रूहानी सम्बन्ध** ज्ञात है तो अब हमें रूहानी सम्बन्ध को व्यवहार में लाना चाहिये और मुख्यत: उसी के अनुसार अपने कर्त्तव्य और अधिकार निश्चित करने चाहिये। देह पर आधारित सम्बन्धों ही को अपने सम्बन्ध मानकर जन्म-जन्मान्तर तक हम कर्मों का लेखा तो जोड़ते ही आये हैं और इन्हीं के कारण फल भी भोगते आये हैं। चूंकि देह पर आधरित सम्बन्धों में मोह, ममता, आसक्ति, आकर्षण-विकर्षण, राग-द्वेष तथा हिसाब-किताब भी थोड़ा-बहुत होता है जबकि रूहानी सम्बन्ध आत्मा को देह से न्यारा करके सभी का परस्पर ''**भाई-भाई**'' ही की **दृष्टि** और वृत्ति प्रदान करता है और, इस प्रकार, नष्टोमोह: बनाता है, तो हमें भी अब पुन: मोह-रहित निर्विकार बनने के लिये रूहानी नाते के अनुसार व्यवहार करना चाहिये और कुटुम्ब-परिवार में रहना चाहिये। अन्यश्च, अब हमें **केवल कर्मठ नहीं बल्कि कर्मयोगी** बनना चाहिये, अर्थात् कर्म करते हुए भी आत्मा का नाता परमपिता परमात्मा से जोड़े रहना चाहिये। कर्म योगी और भोगी में महान अन्तर है। **भोगी तो कर्मेन्द्रियों के अधीन होता है जबकि कर्मयोगी का कर्मेन्द्रियों पर अधिकार होता है** और इससे उसके कर्मों की कुशलता बढ़ती है। अब हम ज्ञान नेत्र खोले रखेंगे और ज्ञान-दीप जगाये रखेंगे, तभी हम कर्म योगी और आत्म-चेतस्, आत्माभिमानी (Soul-conscious) अथवा **विदेह** अवस्था में स्थित हो सकेंगे। इस विषय में राजा जनक के बारे में जो आख्यान प्रसिद्ध है, वह भी शिक्षाप्रद और प्रेरणाप्रद है।

कहते हैं कि एक बार एक संन्यासी राजा जनक के पास गया और बोला–''महाराज, सुना है कि आप सभी राज-कारोबार करते हुए भी विदेह अवस्था में रहते हैं। वह कैसे?'' इसके उत्तर में राजा जनक ने कहा–''महात्मन, यह जगता हुआ दीपक लेकर तब तक आप महल को भीतर से देखें और मैं भी कुछ ही समय में राज-कारोबार से कुछ फ़ारिग़ हो जाऊंगा। तब आप से इस विषय पर चर्चा भी कर लूंगा। परन्तु, हाँ, महात्मन, यह ख्याल रखिये कि यह दीपक बुझ न जाये।''

अत: वह संन्यासी दीपक लेकर राजमहल देखने गया। संन्यासी का ध्यान दीपक पर ही रहा ताकि दीपक बुझने न पाये। जब वह सारे राजमहल के अन्दर चक्कर लगा कर लौट आया तो

राजा जनक ने पूछा– ''महात्मन्, आपने राजमहल देखा? कैसा लगा?'' तब इसके उत्तर में वह संन्यासी बोला–''राजन्, आपने यह जो कह दिया था कि मैं दीपक को बुझने न दूं, उसके कारण मेरा तो ध्यान विशेष तौर पर दीपक पर ही बना रहा। अत: महल को देखते हुए भी नहीं देखा''।

तब राजा जनक ने कहा कि–''बस, मेरी विदेह अवस्था की विधि भी यही है। मेरा ध्यान भी इसी पर रहता है कि आत्मा का दीप बुझने न पाये, अर्थात् इसमें ज्ञान-घृत भी रहे और लौ भी जगती रहे, अत: मैं कारोबार करने पर भी देह और देह की दुनिया में रहते हुए विदेह स्थिति में रहता हूं।''

परिवार वालों को भी ऐसा ही करना है। सभी सम्बन्धियों के साथ रहते हुए तथा कर्म करते हुए भी इस बात की स्मृति बनी रहे कि– ''**मैं आत्मा हूं, ज्योति स्वरूप हूं, अनादि और अविनाशी हूं, एक लाईट हूं और माईट हूं**....'' और इस स्मृति में स्थित होकर कर्म भी होते रहें। तब दैहिक सम्बन्ध गौण रूप ले लेंगे। सभी ''आत्मा'', अर्थात् देह में विराजमान ज्योतिबिन्दु ही दिखाई देंगे। तब कर्म **अलौकिक** होंगे। तीसरा नेत्र खुला रहेगा। देहाभिमान मिट जायेगा। आसक्ति एवं मोह-ममता की दलदल में नहीं फंसेंगे। **कर्म 'अकर्म' बन जायेगा** क्योंकि देह-दृष्टि पर आधारित न होने से विकर्म नहीं बनेंगे बल्कि परमात्मा की स्मृति से वे **अलौकिक** एवं पवित्र हो जायेंगे।

2. स्नेह, सम्मान और सहयोग

हमने दूसरे पाठ में इस विषय में भी चर्चा की थी कि आज सभी में **स्वार्थ** भरा है। सच्चा, रूहानी प्यार महसूस नहीं होता। कोई हमसे पैसे की आशा रखता है, कोई किसी कार्य को कराने की। आत्मिक सम्बन्ध और ईश्वरीय परिवार के नाते जो **अलौकिक प्यार** होना चाहिये, वह आज नहीं रहा। वह शुद्ध स्नेह न रहने के कारण परस्पर **सहयोग** भी नहीं रहा। समय पर कोई किसी की सच्चे दिल से मदद नहीं करता और इन दोनों के न होने से एक-दूसरे को **सम्मान** भी नहीं देते। आज वह सेवा-भाव भी नहीं रहा। हर कोई दूसरों से सेवा, सहयोग और स्नेह की आशा तो करता है परन्तु स्वयं दूसरों के साथ जो व्यवहार करता है, उसमें इसका समावेश नहीं करता।

वास्तव में स्नेह ही मनुष्यों के मन को जोड़ने वाला है। स्नेह ही समीप लाकर उनकी ग़लतफहमियाँ भी नहीं होने देता। परन्तु स्नेह तभी बढ़ता है जब कम-से-कम निम्नलिखित बातें हों :–

इस विषय में हमें स्पष्ट रूप से यह तो याद रखना चाहिये कि हमारा स्नेह मोह का रूप न ले या लगाव में न बदल जाये। देहधारियों के मोह से तो हमें मुक्त होना है। मोह तो नरक का द्वार है।

परस्पर स्नेह को बढ़ाने वाले मुख्य कारक (Factor)

(i) समय पर सहायता करना या सहयोग देना

अगर किसी को किसी अवसर पर हमारी सहायता और सहयोग की आवश्यकता हो और, विशेष कर, उस समय हमारी मदद के बिना उसका काम रूकता या खराब होता हो, तब यदि हम उसकी **सहायता** करें, तब उसका स्नेह जुटेगा और वह दुआ भी देगा तथा एहसान भी मानेगा। इसके विपरीत, यदि उस समय हम उससे बहाने बनाने लगें, पीठ मोड़ लें या उसे असहाय छोड़

दें तब तो उसमें बदले की भावना या वैर भावना आना संभव है। अत: पारिवारिक जीवन में यदि एक-दूसरे के निकट-सम्बन्धी होकर भी आड़े समय में भी एक-दूसरे को सहयोग नहीं देते और अपनी जान छुड़ाने की कोशिश करते हैं तो स्नेह कैसे रहेगा? यह तो स्वार्थपरता और अमानुषिकता का प्रतीक है। यदि हम किसी को किसी भी प्रकार का स्थूल सहयोग किन्हीं कारणों से नहीं दे सकते तो कम-से-कम मानसिक तौर पर सहानुभूति तो प्रगट कर ही सकते हैं। अगर हमारे पास (i) धन, (ii) समय, (iii) शारीरिक सामर्थ्य, (iv) साधनों का अभाव है या हम नये कर्म-बन्धन न बनाने के भाव से कुछ भी नहीं करना चाहते, तब भी राय तो दे सकते हैं। अन्य जिससे सहायता मिल सकती हो, उसकी ओर तो इशारा कर सकते हैं। विशेषकर यदि तन द्वारा किसी की **विपत्ति-व्याधि-विघ्न** दूर हो सकते हों तो हम शरीर द्वारा यदा-कदा थोड़ी-बहुत सेवा तो कर सकते हैं? इसमें तो पुण्य-लाभ है।

(ii) किसी के गुण-कर्म-कर्त्तव्य की उचित सराहना और उचित प्रोत्साहन

घर-परिवार में जिस सदस्य में जो विशेषताऐं हैं और उन खूबियों के कारण वे जो विशेष कार्य करते हैं, उन योग्यताओं के बारे में हम सभी तो **उचित मात्रा में** कुछ मित्र-जनों के सामने वर्णन कर देना चाहिये। वर्ना वह व्यक्ति सोचेगा कि या तो हम शब्दों के इतने कंजूस हैं कि किसी के गुण देखकर हम कभी उनका ज़िक्र तक भी नहीं करते, या हम में उनके प्रति ईर्ष्या है कि हम उनकी योग्यताओं का इसलिये वर्णन नहीं करते कि लोग उनकी ओर अधिक न झुकने लगें और या हम में मनुष्य के **गुण-कर्म-कला** की पहचान ही नहीं है और, इसलिये हम उनके मूल्य को ही नहीं जानते-पहचानते। इससे तो स्नेह कम ही होगा। वह व्यक्ति सोचेगा कि हमारा उससे प्यार ही नहीं है। और सचमुच प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि हम उसकी इतनी अवहेलना क्यों करते हैं कि उसके किसी भी गुण के कद्रदान (योग्यता को महत्व की बात कहने वाले) नहीं हैं। यदि हमारा सच्चा प्यार है तो हमारे मुख से कभी तो उचित अवसर पर उचित महत्व-वर्णन के शब्द निकलने चाहियें।

इसी प्रकार, घर-परिवार में किसी का जन्म-दिन है तो 'जन्म-दिन मुबारिक' या उसका मुख मीठा कराने का कर्त्तव्य भी निभाना चाहिये। किसी कनिष्ठ भ्राता या छोटे बच्चे ने किसी प्रतिस्पर्धा में कुछ जीता है या परीक्षा में अच्छी श्रेणी प्राप्त की है तो उसे भी किसी प्रकार से उसकी सफलता की बधाई देनी चाहिये। उसको यदि प्रोत्साहन देकर उसका उत्साह बढ़ाया जाता है तो वह समझता है कि वरिष्ठजनों का मुझ पर आशीर्वाद है, वही आगे भी मुझे सफलता प्राप्त कराएगा। उससे भविष्य में भी उसकी हिम्मत बढ़ती है और उसकी योग्यता में निखार आता है।

यदि हम किन्हीं कारणों से किसी सदस्य के गुणों तथा योग्यताओं की चर्चा नहीं भी करते तो कम-से-कम हम अपने परिवार के किसी सदस्य की **यों ही निन्दा तो न किया करें।** उनकी कमियों का ढिंढोरा पीटकर तो दूसरों को न बताया करें। ऐसा करने से स्नेह कम ही होगा या स्नेह की बजाय मन में घृणा तथा पीढ़ा ही का अनुभव होगा। ज्ञानवान तथा योगियों या योगी बनना चाहने वालों को तो चाहिये कि वे गम्भीरता का गुण धारण करें और दूसरों की कमियों की बजाय अपनी कमियों को निकालने की ओर ध्यान दें। **घर-परिवार के किसी व्यक्ति में यदि कोई कमी है, तब उसे**

तो दूर करने या स्वयं सहयोग देकर उस कमी को पूरा करने का कर्त्तव्य करना चाहिये।

(iii) अधिक अपेक्षाएं या माँगें न रखना

जो व्यक्ति दूसरों से कई आशाएं, इच्छाएं, अपेक्षाएं तथा माँगें (Demands) अपने मन में भरे रखता है और एक-न-एक पूरी न होने पर नाराज़ भी हो जाता है, तब उससे लोग भला प्रसन्न कैसे रहेंगे और वे उससे प्यार कैसे करेंगे? सदा अपनी माँगें पूरी कराने वाले से स्नेह कैसे जुटेगा? उससे तो सभी दूर भागेंगे क्योंकि वे सोचेंगे कि यह कुछ मांगना चाहता है। जिसकी इच्छाएं-तृष्णाएं (Ambitious) पूरी ही नहीं होती होंगी, ऐसे **इच्छाओं की अति वाले (Over-ambitious) व्यक्ति से स्नेह होना तो कठिन है। अतः यदि हम चाहते हैं कि सबका हम से स्नेह हो और हमारा भी सभी से स्नेह हो तो हमारे जीवन में 'सादगी' और 'सन्तुष्टता' होनी चाहिये तथा ''इच्छा मात्रं अविद्या''** वाली स्थिति होनी चाहिये या दूसरों से कोई अधिक फ़र्मायश नहीं करनी चाहिये, चाह नहीं रखनी चाहिये। इच्छाओं वाले व्यक्ति का प्यार तो वस्तुओं से होता है और उसका मतलब तो अपनी आवश्यकताऐं पूरी कराने से होता है, उनका दूसरों के साथ कैसा प्यार ओर उनसे क्या मतलब? कहा गया है कि

''मतलबी यार किसके?
खाया, पीया और खिस्के।''

इसकी बजाए यदि स्नेह रूहानी होगा, अर्थात् आत्मिक नाते से होगा तो वह स्थिर रहेगा। यदि किसी के (i) **रंग-रूप** के कारण, इसके बटुवे (Purse) में **नोटों के कारण**, उसकी **बड़ी कुर्सी** (Position) के कारण या किसी द्वारा कुछ अस्थायी **मान-सम्मान** मिलने के कारण किसी व्यक्ति का स्नेह है, तब तो वह स्नेह भी **अस्थायी** होगा। यदि किसी से भोग-विलास का माल मिलने के कारण कोई व्यक्ति उससे स्नेह करता है, तब वह तो वास्तव में उसका स्नेह उस व्यक्ति से नहीं है बल्कि **भोग-रस** या **विलासिता** की वस्तुओं से है और इनके कारण उसका उस व्यक्ति से लगाव है जो उसे यह सब देता है। उस लगाव में तो वह उस व्यक्ति में फंस जाता है और अब तो उसका मन उस व्यक्ति या वस्तुओं से निकलना ही कठिन है। **जिस आकर्षण से मनुष्य अधीन हो जाये, इसको क्या स्नेह कहेंगे?** स्नेह तो शुद्ध मनोभाव का नाम है जो एक आत्मा का दूसरी आत्मा से है और जो (i) **ज्ञान-युक्त**, (ii) **मर्यादा-युक्त**, और (iii) **बन्धन-मुक्त** है। वास्तव में ऐसा प्यारापन जिसमें न्यारापन भी हो, सच्चा स्नेह है। उस सच्चे स्नेह से ही कुटुम्ब-परिवार स्वर्ग के समान बन सकता है।

3. मिथ्या अनुमान या श्रद्धा-सन्मान?

जहाँ व्यक्ति **सम्बन्धों**, **कर्त्तव्यों** और **अधिकारों** को समझते हुए **उचित** सम्बन्ध और **स्नेह** से व्यवहार करता है, वहाँ एक-दूसरे में (i) **श्रद्धा**, (ii) **भावना**, (iii) **मान-सन्मान** बना रहता है। इसके विपरीत जहाँ न तो व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों को निभाए और न स्नेह से व्यवहार करे, वहाँ व्यक्तियों के मन में एक-दूसरे के प्रति **सन्देह** पैदा हो जाता है। कई बार ऐसा भी होता है कि किसी व्यक्ति के अपने सम्बन्ध किसी अन्य व्यक्ति से ठीक नहीं होते या उसमें कोई कमी-

कमज़ोरी होती है, तब यदि कुछ व्यक्ति आपस में बात कर रहे हों तो उसके मन में यह **मिथ्या अनुमान** पैदा हो जाता है कि – ''ये मेरे बारे में ही बात कर रहे हैं। मुझ में जो कमियाँ-कमज़ोरियाँ हैं, उनमें से ही किसी के विषय में यह चर्चा कर रहे हैं। यह मेरी ओर देख भी इसलिये रहे हैं कि यह बात मेरे ही बारे में है। मुझे देख करके वे चुप भी इसलिये हो गये हैं कि मैं अपने विषय में उनके बीच हो रही चर्चा को सुन न लूं।'' ऐसा मिथ्या अनुमान लगाकर वह उनसे पूछता है– ''क्या बात कर रहे थे?'' यदि वे कहते हैं कि– ''कुछ नहीं; ऐसे ही बात हो रही थी'', तब तो उसका सन्देह और अधिक पक्का होता है और वह उनसे फिर पूछता है– ''ऐसे ही क्या बात कर रहे थे?'' इस प्रकार, **सन्देह** और **मिथ्या अनुमान** का चक्र चलता रहता है।

कोई व्यक्ति हमारे बारे में अपने ही अनुभव के आधार पर यदि हमें कुछ कहता है तो वह कहता है कि– ''आपसे फ़लाँ व्यक्ति ने मेरे बारे में कुछ बताया है ना?'' यदि वह कहे कि– ''नहीं, उससे तो मेरी बात ही नहीं हुई; ये तो मेरे अपने विचार हैं'', तब भी उसे विश्वास नहीं होता और वह मिथ्या अनुमान लगाये ही जाता है। इस प्रकार की आदत से पारस्परिक सम्बन्ध बिगड़ते हैं।

इसकी बजाय यदि स्वयं में गुण धारण किये जायें और नकारात्मक अनुमान (Negative assumption) न किये जायें और एक-दूसरे पर विश्वास के फलस्वरूप परस्पर **विश्वास** (Trust and faith) बढ़ता है और इससे स्नेह भी दृढ़ होता है वर्ना तो सन्देह ही बढ़ता जाता है और एक-दूसरे के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण (Negative attitude) और घृणा ही पनपते हैं। जब हम परिवार के सदस्य हैं तो एक-दूसरे के साथ अगर हमारा विश्वास का नाता नहीं होगा तब तो इकट्ठे जीना ही मुश्किल हो जायेगा।

यदि परस्पर विश्वास होगा तो उससे एक-दूसरे की बात को मानेंगे भी और एक-दूसरे को सम्मान भी देंगे। यदि हमें तीसरा कोई व्यक्ति हमारे कुटुम्ब के दूसरे किसी सदस्य का नाम लेकर कहेगा कि वह (दूसरा) हमारी निन्दा कर रहा था, तो हम इस तीसरे की बात को इतना अधिक महत्व नहीं देंगे बल्कि पहले तो यही सोचेंगे कि ऐसा नहीं हो सकता और हम परस्पर बात करके भी वास्तविक स्थिति को जान सकेंगे। वर्ना यदि हमारा परस्पर विश्वास नहीं होगा तब तो तीसरे, चौथे, पाँचवें किसी भी व्यक्ति द्वारा हम अपने परिवार के दूसरे किसी सदस्य के बारे में कुछ उल्टा-पुल्टा सुनेंगे तो हम उन (तीसरे, चौथे आदि) को ठीक मान लेंगे और इससे आपस के सम्बन्धों में दरारें आती जायेंगी।

4. जोश

घर-परिवार में कोई-कोई सदस्य ऐसा होता है कि वह जल्दी ही जोश में आ जाता है और जोश में आने से वह होश गंवा कर बड़े-छोटे को भी न देख कर जो मन में आये कह डालता है और इससे भी सम्बन्ध बिगड़ते हैं। अत: इस आदत को भी पारिवारिक जीवन के लिये हानिकर मानकर सभी को चाहिये कि जोश को छोड़ें।

जोश से तो मनुष्य की अपनी ही छवि (impression) ख़राब होती है और मानसिक

सन्तुलन भी बिगड़ता है। प्राय: देखा गया है कि जोश करने वाला व्यक्ति बाद में भी स्वयं भी सोचता है कि मेरे बात करने का तरीका ग़लत था और कि अशान्ति की स्थिति में जो बात कही गयी, वह बात भी ठीक नहीं थी। अत: कई बार वह स्वयं भी अपने शब्दों को वापस लेना चाहता है और सम्बन्धों में बिगाड़ आने के कारण मन में तनाव (Tension या depression) भी अनुभव करता है परन्तु अपनी आदत के वश होता है। **यदि उसमें अभिमान (Ego) न हो और दूसरे के प्रति घृणा न हो तो जोश होने की सम्भावना कम होगी। अत: यदि ये चार बातें ध्यान में रखी जायें कि (i) जोश करने से मेरी अपनी ही छवि धूमिल होगी, (ii) जोश से कही हुई बात से सम्बन्ध भी बिगड़ेंगे और आगे के लिये सम्बन्धी और मित्र समीप नहीं आयेंगे बल्कि दूर भागेंगे, (iii) जोश में कही हुई बात में होश की बुद्धिमानी कम होगी और शायद उससे काम बिगड़ेगा और (iv) जोश से लोगों की घृणा होने के कारण वे जोश की बात की अवहेलना करेंगे या उसे कम मान्यता देंगे क्योंकि वे सोचेंगे कि इसकी तो आदत ही ऐसी है, तो उसका जोश धीरे-धीरे कम होने लगेगा।** यदि आत्मा के स्वरूप की स्मृति में रहा जाए और शान्ति के सागर परमपिता परमात्मा से मन का सम्बन्ध जोड़ा जाये तो मन शीतल होता जायेगा और जोश मिटता जाएगा।

5. रोब डालने की आदत

घर-परिवार में कोई-न-कोई ऐसा व्यक्ति भी होता है जो स्वयं को सभी का **मुखिया** (Boss) मानकर चलता है। उसे शायद बचपन में ही ऐसी आदत डाली गयी होती है कि वह रोब से काम कराता है। वह कभी भी नहीं कहता– ''क्या आप कृपया एक गिलास पानी दे देंगे'' बल्कि वह रोब डाल कर कहेगा– ''ऐ, जाओ, जल्दी से पानी का गिलास लाओ। फ़टाफट दौड़ कर आना।'' वह स्वयं से किसी बड़े को भी कह देंगे– ''मेरे इस हाथ से यह ब्रीफ़केस आप ले लो; मैं दूसरे हाथ से थैला उठा लूंगा।'' छोटी बहन अपनी काफ़ी बड़ी बहन को तड़ाक से कह देगी– ''बैठी हुई क्या कर रही है? इतना भी नहीं करती कि मैं झाड़ू लगा रही हूं, तू पोंछा लगा ले। बैठे-बैठे क्या माला जप रही है?'' ऐसे ही सभी पर राज्य करने, जो मन में आये उन्हें वह काम करने को कहने और स्वयं मुखिया बन जाने की आदत वालों से भी परिवार के सदस्य परेशान हो जाते हैं। प्रभुत्व जमाने वाले व्यक्ति दूसरों को कहते हैं–जाओ तुम फलां काम करो, वह फलां बात का ध्यान दे, वह जो सामने बैठा है, वह बाज़ार जाकर फलां चीज़ खरीद लाये...। जाओ, सभी देख क्या रहे हो, अपना-अपना काम करो।'' उसे इस प्रकार का कार्य करने की ज़िम्मेवारी या अधिकार किसी ने भी नहीं दिया होता परन्तु वह अपने आप ही हकूमत करने लगता है। इससे सभी लोग उससे दूर भागते हैं। वह परिवार में हलचल मचा देता है और इस बिगड़े हुए व्यक्ति के कारण वे परिवार ही से हट जाना चाहते हैं। उस व्यक्ति को यदि कोई कहता है कि आपका न तो यह कार्य है न अधिकार तो वातावरण अधिक ही खराब होता है। वह व्यक्ति जिन दिनों परिवार में नहीं होता लोग चैन और शान्ति महसूस करते हैं और वैसे भी उसकी पीठ के पीछे कहते हैं कि–''यह ऐसे ही हर बात में चौधरी बना फिरता है।''

वास्तव में परिवार के सभी सदस्यों को देखना चाहिये कि क्या उनका थोड़ा-बहुत कुछ ऐसा संस्कार तो नहीं है। यदि है तो उसे ठीक करना चाहिये। नम्रता और अन्य दिव्य गुणों से ही सब

के मन को जीतना चाहिये। **रोब तो स्वयं को दूसरों की पीठ पर लादने या उनके कन्धों पर सवार होने की तरह है जबकि नम्रता और दूसरों के प्रति सम्मान से मनुष्य उनके हृदय-सिंहासन पर विराजमान होता है।**

6. घर का वातावरण

हमने जिन गुणों, मूल्यों या आदतों की यहाँ चर्चा की है, उनसे ही घर का अच्छा या बुरा वातावरण बनता है। वह वातावरण यदि आश्रम की तरह शान्ति, सादगी और रूहानियत से भरपूर हो तो वह घर आश्रम की तरह हो जाता है और उस गृहस्थ को 'गृहस्थ **आश्रम**' कहते हैं। यदि वहाँ के सदस्यों में (i) लौकिकता हो, (ii) देहाभिमान हो, (iii) स्थूल और (iv) राजसिक कार्य-व्यवहार का वातावरण हो तो वह 'गृहस्थ' कहलाता है; '**आश्रम**' शब्द उससे निकाल देना चाहिये। दोनों में काफ़ी अन्तर पड़ जाता है और उसका वहाँ के सदस्यों पर भी वैसा ही प्रभाव पड़ता है। हमारी मन की जो विचार-तरंगें होती हैं, वे व्यक्तियों और वातावरण को प्रभावित करती हैं। जिस वातावरण में परस्पर स्नेह हो, सम्बन्धों में अलौकिकता हो, जोश और रोब न होकर (i) शान्ति और (ii) नम्रता हो, (iii) एक-दूसरे पर विश्वास हो, उस स्थान का वातावरण मनुष्य के मन में सात्विक विचार उत्पन्न करता है, उसके शरीर को भी विश्राम की तरह का अनुभव कराता है और देह तथा बुद्धि के विकास में सहायक होता है। इसके विपरीत यदि वातावरण में (i) सन्देह, (ii) मिथ्या अनुमान, (iii) जोश, (iv) रोल, (v) लौकिकता, (vi) लगाव-झुकाव इत्यादि हो, वहाँ का वातावरण खुशी में कमी लाता है और नकारात्मक विचार उत्पन्न करता है। ऐसा घर-परिवार एक अस्पताल, सराय श्मशान, दूकान, दंगल इत्यादि के जैसा वातावरण बना देता है।

जहाँ जिस प्रकार की **वार्ता** हो और जिस तरह **वर्णन** हो, वहाँ का वैसा ही **वार्तावर्णन** (वातावरण) होता है। वातावरण केवल जल-वायु या हरियाली और पुष्पावली ही से नहीं बनता बल्कि मन की हरियाली और विचारों की पुष्पावली या सुगन्धी से भी बनता है।

जीव-शास्त्री या वैज्ञानिकों ने वैज्ञानिक प्रयोग करके देखे हैं कि मनुष्य की भाव-तरंगों का पौधों पर क्या प्रभाव पड़ता है। प्रयोगों से ये निष्कर्ष सामने आये कि यदि घर वाले यह सोचते हैं कि फ़लाँ पौधे बहुत अच्छे, सुन्दर, सुगन्धि वाले, शोभा बढ़ाने वाले और शुभ हैं तो पौधे इन विचार-तरंगों से बढ़ते हैं और यदि इसके विपरीत सोचा जाये तो वे मुर्झाना शुरु कर देते हैं और जल्दी ही नष्ट हो जाते हैं।

इस प्रकार सोचा जा सकता है कि मनुष्य के मनोभावों तथा विचार-तरंगों का वातावरण पर और वातावरण का भाव-तरंगों पर कितना प्रभाव पड़ता है! यहाँ तक कहा गया है कि प्राचीन काल में ऋषि अपने आश्रमों में बैठे होते थे और उनके निकट ही शेर भी हिंसा के भाव को छोड़कर बैठ जाते या घूमते रहते थे। अत: हमें चाहिये कि परिवार का हर व्यक्ति ऐसा ही सकारात्मक, शुद्ध, सात्विक, योग-युक्त भाव-तरंगे विनिसृत करें।

7. दिनचर्या कैसी हो?

हमने प्रथम पाठ के दौरान ही बताया था कि परिवार के सदस्यों की दिनचर्या ही कई बार ऐसी होती है कि जिससे अन्य सदस्यों को परेशानी होती है। हमने यह भी बताया था कि दिनचर्या का भी वातावरण पर प्रभाव पड़ता है। अत: प्रश्न उठता है कि हमारी दिनचर्या क्या हो?

इस विषय में यह कहना होगा कि प्रात: जल्दी अर्थात् अमृतवेले ही उठना चाहिये। प्रात: जैसे ही नींद खुले, वैसे ही पहला संकल्प यह आना चाहिये कि–''मैं एक ज्योति बिन्दु आत्मा हूं; शरीर तो मेरा रथ है। मैं एक लाईट हूं, एक माईट (might) हूं। मैं ज्योतिस्वरूप परमपिता परमात्मा की अमर सन्तान हूं, मैं परमधाम अथवा ब्रह्मलोक से आया हूं। अब मैं सृष्टि रूपी कर्म क्षेत्र पर उतर कर कर्म करूंगा। हे शिव बाबा, ओम शान्ति, (नमस्ते अथवा गुड मार्निंग – Good morning)।

इसके बाद स्वच्छ होकर घंटा-आध घंटा परमपिता परमात्मा की लग्न में मग्न होने का, अर्थात् सहज राजयोग के अभ्यास का पुरुषार्थ करना चाहिये। उसके बाद स्नान आदि से निवृत होकर ईश्वरीय ज्ञान का श्रवण या अध्ययन और कुछ समय ईश्वरीय गुणानुवाद एवं स्मृति में स्थिति का अभ्यास करना चाहिये। फिर, दिन-भर भी यदि कार्य करते हुए ईश्वरीय स्मृति और आत्मिक स्थिति न भी बनी रह सके तो हर घंटं में दो-चार मिनिट तथा हर दो-चार घंटों के बाद चार-पाँच मिनिट ईश्वरीय स्मृति में स्थिति का, अर्थात् योग का अभ्यास करना चाहिये। तत्पश्चात्, रात्रि को लगभग 9 बजे पुन: ज्ञान-अध्ययन करके, कुछ समय योगाभ्यास करने से संस्कार भी बदलते जायेंगे, वातावरण भी शुद्ध होगा और परिवार भी सुखी होगा।

कुछेक प्रश्न

1. हम अन्य अधिकारों की तो बात करते हैं परन्तु क्या हमें हमारा ईश्वरीय जन्म-सिद्ध अधिकार भी मालूम है? वह क्या है, कब मिलता है और कैसे मिलता है?
2. हम देह के सम्बन्ध तो जोड़ना जानते हैं परन्तु क्या परमात्मा, जो कि शरीर-रहित ज्योति है, उससे भी सम्बन्ध जोड़ना जानते हैं? उसके साथ हमारे जो सम्बन्ध हैं, उनका गायन तो हम करते हैं परन्तु क्या उनकी अनुभूति भी हमने की है?
3. परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ने का भाव क्या है? परमात्मा से सम्बन्ध कैसे निभाये जा सकते हैं? उन सम्बन्धों के आधार पर हमारे क्या कर्त्तव्य और क्या अधिकार हैं।
4. सम्बन्धों को अलौकिक कैसे बनायें और उनमें रूहानियत कैसे भरें? संसार में न्यारे और प्यारे कैसे रहें? नदी और नाव की उपमा को जीवन में आध्यात्मिक रूप से कैसे लायें?
5. 'स्नेह' और 'मोह' में क्या अन्तर है? हम सब के साथ प्यार करते हुए भी नष्टोमोह: कैसे बनें?
6. किसी के गुण-कर्म-स्वभाव की प्रशंसा करने या उसे प्रोत्साहन देने की अधिकाधिक सीमा क्या है और निम्नत्तम सीमा क्या है और यह कहाँ तक तथा किस रूप में उचित है?
7. यदि परिवार में कोई व्यक्ति अधिक महत्वाकांक्षी, बहुत अधिक अपेक्षाओं तथा मांगों वाला हो तो उसके साथ टकराव के बिना तथा अशान्त हुए बिना हम कैसे रहें? (i) क्या हम बर्दाश्त करते चलें? (ii) क्या हम स्पष्ट बता दें कि उसका यह व्यवहार ठीक नहीं है? (iii) क्या हम उससे व्यवहार कम कर लें और दूर रहें? (iv) क्या हम उसकी मांगे पूरी करते रहें? (v) ऐसे व्यक्ति

के परिवर्तन की विधि क्या है?

8. किसी की यदि मिथ्या अनुमान की आदत हो और वह उस कारण हम से नाराज़ रहता हो और ग़लतफ़हमियों में फंसा हो तो हम उससे कैसे व्यवहार करें? (ii) उसकी यह आदत हम कैसे छुड़ा सकते हैं? (iii) क्या हम दो-चार बार यह सिद्ध करके बतायें कि वह मिथ्या अनुमान करता रहता है?

9. मनुष्य में जोश पैदा होने के क्या-क्या कारण हैं और हरेक कारण का निवारण क्या है? (ii) जिस समय कोई व्यक्ति तनाव में आकर जोश कर रहा हो उस समय हम क्या करें और जोश के बाद जब उसका मन दु:खी हो, तब हम क्या करें? (iii) जोश वाले व्यक्ति के संग रहने, उसका साथ देने तथा उससे व्यवहार करने में यदि हमें डर लगे तो उस डर का निवारण कैसे करें?

(10) जिनमें रोब डालने, चौधरी बनने, हुकूमत चलाने या प्रभुत्व बनाने की आदत हो, उनके साथ हम सुख-शान्ति से कैसे चलें?

(11) हम घर में स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार के वातावरण को आश्रम के वातावरण-जैसा, अथवा सात्विकता और सादगी-भरा वातावरण कैसे बनायें? (ii) वृत्ति का वातावरण से हम कैसे सम्बन्ध मान लें? (iii) क्या वातावरण भी वृत्ति पर प्रभाव डालता है? कोई उदाहरण दें?

(12) हम कर्म करते हुए आजकल के वातावरण में कैसे कर्मयोगी बने रहें? अगरबत्ती का उदाहरण तो स्थूल है; क्या ऐसे कोई उदाहरण हैं जिनसे यह स्पष्ट होता हो कि हम योग-बल से वातावरण को भी बदल सकते हैं?

(13) हम पारिवारिक जीवन को एक आदर्श जीवन कैसे बनायें?

पाँचवाँ पाठ

सकारात्मक चिन्तन, सादगी, सात्विक भोजन और सन्तुलन तथा समान व्यवहार करने, भूल मान लेने, प्रायश्चित करने तथा स्व-शासन रूपी गुण

हरेक मनुष्य हर क्षण कुछ-न-कुछ सोचता तो रहता ही है–वह शुभ सोचे या अशुभ, गुण की दृष्टि से सोचे या अवगुण की दृष्टि से। देखा और अनुभव किया गया है कि मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही वह हो जाता है (As he thinks so does he become)। मनुष्य की सुख-दु:ख या खुशी और अशान्ति की अनुभूति भी उसके सकारात्मक या नकारात्मक चिन्तन पर ही आधारित होती है। दो व्यक्तियों की किसी बस से दुर्घटना हुई। वे बस के नीचे आ गए। दोनों की एक-एक भुजा, और वह भी दायीं भुजा, कुचली गयी, टूट गई और कट गई। सम्बन्धियों को बड़ी सहानुभूति थी। उन्होंने अस्पताल में दोनों के अलग-अलग कमरे में जाकर उनसे स्वास्थ्य-समाचार पूछा। एक तो बहुत-ही दु:खी था, रो-चिल्ला रहा था और कहता था कि ''मेरी दायीं भुजा अब नहीं रही, मैं अब अपने घर-परिवार के उन व्यक्तियों का, जो मेरी कमाई पर आश्रित थे, भरण-पोषण कैसे करूंगा? अब मैं कुछ भी कमा तो सकूंगा नहीं; अब क्या होगा?'' ऐसा कहकर वह दर्द की अभिव्यक्ति के साथ मानसिक दु:ख की भी अभिव्यक्ति करते हुए गर्दन मारता था और ऐं-ऐं-ऐं ऐसी क्रन्दन ध्वनि करता था।

इसकी तुलना में दूसरा व्यक्ति बहुत हद तक शान्त था और आशा की मुद्रा में था। उससे किसी ने कहा कि– ''बहुत दु:ख की बात है कि आपकी दायीं भुजा कट गई; अब आप काम कैसे करेंगे और कमायेंगे कैसे? उस व्यक्ति ने कहा कि–''साहिब, मैं तो खुशनसीब हूं, भाग्यवान हूं। भगवान ने मुझ पर बड़ी कृपा की कि मैं बच गया। अब मैं ज़िन्दा हूं और मेरा बायाँ बाजू भी ठीक है; वह भी दायीं की तरह ही मज़बूत है। अत: कोई चिन्ता की बात नहीं है। मैं सब कुछ कर लूंगा।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक ही परिस्थिति में होते हुए भी एक आशावान था, एक निराश; एक आस्थावान था, दूसरा अपनी आस्था भी खो चुका था; एक में उत्साह बना हुआ था, दूसरा निरूत्साहित (Depressed) हो चुका था; एक के मन में अभी भी खुशी थी, दूसरा दु:ख से चिल्ला रहा था। दुर्घटना को दोनों में से किसी ने भी निमन्त्रण नहीं दिया था; वह तो बुलाये बिना ही आयी थी, परन्तु सोचने का तरीका, दृष्टि-वृत्ति दोनों की अलग-अलग थी। उसी के कारण दोनों की अनुभूति भी अलग-अलग थी। अब बाजू तो कट ही गयी थी परन्तु जो-कुछ बचा था, उसके बारे में दोनों का चिन्तन सकारात्मक या नकारात्मक था। एक कहता था कि अब मेरे पास बचा ही क्या है और दूसरा कहता था कि अभी तो बहुत-कुछ है। इसलिये किसी ने कहा है कि आप वृत्तान्तों या घटनाओं को तो नहीं बदल सकते परन्तु अपने दृष्टिकोण को बदलना तो आपके हाथ में है (You cannot change events but you can change your attitudes)।

अब बाजू तो वापस नहीं आ सकता था और घटना, जो घट चुकी थी, उसको भी अघटित नहीं किया जा सकता परन्तु, हाँ, सोचने के तरीके को सकारात्मक रूप दिया जा सकता था। इसके अतिरिक्त, जो हो चुका था सो तो हो ही चुका था परन्तु अब उसे या तो खुशी से बर्दाश्त किया जा सकता था या दु:ख से। अच्छा तो वही है कि उसे खुशी से बर्दाश्त किया जाये। चीज़ तो चली गयी, अगर खुशी भी उसके पीछे चली जाये तब तो और भी अधिक हानि होगी। अत: उसे बर्दाश्त करना ही ठीक है। जीवन जीने की कला यही है। इसलिये कहा गया है कि जो जाता नहीं संवारा, उसे जाये सहारा (What cannot be cured must be endured)। इसके लिये सकारात्मक चिन्तन की आवश्यकता है।

घर-परिवार में भी यदि कोई व्यक्ति नकारात्मक दृष्टि, वृत्ति, विचार वाला हो तो संघर्ष तथा अशान्ति की स्थिति बनी रहती है। न केवल वह स्वयं दु:खी होता है बल्कि अन्य सदस्यों की सुख-शान्ति में भी विघ्न डालता है। हरेक को अपने नकारात्मक दृष्टि-कोण से परिस्थिति का विश्लेषण बताकर, भविष्य के बारे में भी नकारात्मक अनुमान लगाकर उनके सामने भी दु:खात्मक चित्र खींचता रहता है। वास्तव में उसे सोचना चाहिये कि यह भी तो सूक्ष्म रूप से दूसरों को दु:ख देने के समान है। यह भी तो पाप है। (i) मिथ्या कल्पना (ii) मिथ्या दिखावा (iii) मिथ्यावाद, (iv) मिथ्या चिन्तन का यह भी एक रूप है। जगत मिथ्या नहीं है, यह चिन्तन-शैली मिथ्या है। अत: मुंह में सड़े हुए दाँत की तरह इसे निकलवा देना चाहिये या घर में इकट्ठी हुई धूल की तरह इसे फेंक कर सफाई लानी चाहिये। यह तो गन्दे पानी की तरह है जिसमें मलेरिया के मच्छर या डेंगू के कीटाणु पैदा होते हैं जो आँखे (दृष्टि) मां खराब करते, ज्वर भी पैदा करते, मस्तिष्क को भी बुरी तरह प्रभावित करते और मनुष्य की मृत्यु भी कर देते हैं। अगर यह कल्पना मिथ्या नहीं है, सत्य है, तो भी इसका दूसरा पहलू भी तो है। पृथ्वी के आधे भाग पर यदि अंधेरा होता है तो आधे पर प्रकाश भी तो होता है। रात्रि को बारह बजे यदि घटाटोप अन्धकार होता है तो उसके बाद सवेरा भी तो शुरु होता है। अत: वह अन्धेरा प्रकाश का अग्रदूत भी तो है। इस तरह मनुष्य को चाहिये कि वह रौशन पहलू पर विचार करे जिससे खुशी बनी रहे।

यदि घर-परिवार में किसी में हमें कुछ दुर्गुण दिखाई देते हैं और उसके फलस्वरूप यदि नकारात्मक विचार चलने लगते हैं, तब व्यक्ति उसके किसी-न-किसी गुण को देखकर सकारात्मक चिन्तन भी तो कर सकता है। ऐसा तो कोई भी व्यक्ति संसार में नहीं होगा जिसमें गुण कोई भी न हो।

2. सादगी

कहा गया है कि सादगी-जैसी सुन्दरता नहीं, क्योंकि सादगी वाले मनुष्य का ध्यान बाहर की सजधज पर नहीं होता बल्कि वह स्वच्छता, निराभिमानता इत्यादि आभूषणों को धारण करता है। मन की सच्चाई और वस्त्र, स्थान, शरीर, भोजन इत्यादि की सफ़ाई के बिना सादगी का कोई अर्थ नहीं। वह तो (i) कंजूसी (ii) आलस्य तथा (iii) मैल-पसन्दी का मिक्सचर (mixture) है।

सजधज के बारे में तो अपनी-अपनी पसन्द होती है और फ़ैशन तो बदलता रहता है। सादगी तो स्थायी और अन्तरराष्ट्रीय स्तर का सौन्दर्य है; उसके बारे में न-पसन्दी की तो कोई बात नहीं।

किसी ने कहा है –

''नहीं मोहताज ज़ेवर का जिसे खूब खुदा ने दी
कि कितना खूबसूरत है चाँद बिन-गहने।''

सादगी में कुछ रूहानियत समाई होती है, उससे सतोगुण की सुगन्धि आती है ओर सादगी करने वाले तथा उसे देखने वाले के भावों में 'साम्य' की स्थिति पैदा होती है तथा उसमें प्राय: सन्तुष्टता की झलक आती है। यदि कोई व्यक्ति सादगी भी दिखावे या नीति के विचार से करता हो तो उसकी बात अलग है।

जो व्यक्ति प्रकृति के आकर्षणों से ऊपर उठकर, संसार की नश्वरता को देखते हुए त्याग वृत्ति को अपनाकर और चमक-दमक तथा सजधज को धन का अपव्यय तथा व्यर्थ मानकर सादा रहता है, उसकी वृत्ति ही अन्तर्मुखी होती है क्योंकि उसे ठाठ-बाठ या दिखावे में रुचि ही नहीं रहती। इस प्रकार सादगी में अनेक गुण समाये हुए हैं। विशेष बात तो यह है कि मनुष्य फ़जूलखर्ची से बच जाता है और बनाव-श्रृंगार पर खर्च करने के लिये वह जीवन के अमूल्य समय तथा शक्ति को व्यर्थ नहीं गंवाता। वह फ़जूलखर्ची से भी बच जाता है तथा व्यर्थ खर्च करने रूपी ग़लत कार्य करने के परिणाम से भी बच जाता है। इसकी बजाय धन और शक्ति की बचत करके वह खुशी प्राप्त करता है और व्यर्थ कर्मों तथा कर्म-बन्धन का खाता खोलने से भी बच जाता है।

इस प्रकार, यदि घर-परिवार में हर व्यक्ति सादगी को अपनाये तो काफ़ी बचत हो सकती है, सन्तुष्टता की स्थिति भी बनी रह सकती है तथा एक-दूसरे से अधिक चमकीली-भड़कीली-खर्चीली चीजें ख़रीदने की दौड़ और होड़ से भी वह मुक्त और निश्चिन्त हो सकता है।

3. सात्विक भोजन

भोजन का तो मनुष्य के चिन्तन से गहरा सम्बन्ध है। इसलिये किसी ने हा है कि ''आप मुझे बतायें कि वह व्यक्ति खाता क्या है तो मैं आपको बताऊंगा कि वह किस प्रकार का व्यक्ति है। (Tell me what a man eats and I will tell you what sort of man he is). यह भी कहा गया है कि ''जैसा किसी व्यक्ति का अन्न होगा, वैसा ही उसका मन होगा।'' ये उक्तियाँ तो भारत के बहुत-से लोगों को मालूम है परन्तु वे उनके अनुसार भोजन की सात्विकता पर ध्यान नहीं देते।

मनुष्य जब मद्यपान करता है तो उससे उसके मस्तिष्क पर ऐसा प्रभाव पड़ता है जिससे कि उसकी मानसिक स्थिति पहले-जैसी या सामान्य नहीं रहती बल्कि उसमें परिवर्तन आ जाता है। इससे हमें यह समझना चाहिये कि भोजन न केवल शक्तिवर्द्धक और पुष्टिकारक होता है बल्कि उसका मनुष्य के मस्तिष्क पर और उसके द्वारा उसके मन पर भी प्रभाव पड़ता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए हमें ऐसा भोजन नहीं करना चाहिये जिससे कि मानसिक स्थिति में विकृति आये क्योंकि मन पर प्रभाव पड़ने से व्यक्ति के कर्म पर भी प्रभाव पड़ता है।

लोग अपने भोजन में कुछेक ऐसे पदार्थ ग्रहण करते हैं जो उत्तेजना पैदा करने वाले होते हैं। कुछेक में ऐसे तत्व होते हैं जो चंचलता लाते हैं और आत्म-नियन्त्रण (Self-control) में बाधा उपस्थित करते हैं। माँस, अण्डें, प्याज़, लहसुन, अधिक मिर्च-मसाले आदि इस प्रकार के पदार्थ

हैं। जो व्यक्ति यह चाहते हैं कि उनमें मानसिक उत्तेजना या उकसाहट पैदा न हो और ऐन्द्रिय चंचलता भी न हो, उन्हें चाहिये कि वे ऐसे पदार्थों को भोजन में न लें।

इसके अतिरिक्त, यह भी देखा गया है कि जैसे अन्न का प्रभाव मनुष्य के मन पर पड़ता है, वैसे ही मन का प्रभाव भी अन्न पर पड़ता है। मन के प्रकम्पन भी भोजन में सत्व, रज या तम को उभारते हैं और वह फिर खाने वाले के मन को प्रभावित करते हैं। इसलिये ''जैसा मन वैसा अन्न'' भी एक अनुभूत सत्य है परन्तु प्राय:लोग उससे अपरिचित हैं। जो लोग अपने जीवन को सात्विक बनाना चाहते हैं, उन्हें चाहिये कि वे ऐसे धन से भोजन की सामग्री को खरीदें जो कि ईमानदारी, न्याय तथा मानुषिकता से कमाया गया हो। फिर, भोजन बनाते समय भी वे नकारात्मक चिन्तन (negative thinking) न करें, बल्कि परमपिता परमात्मा की स्मृति में स्थित होकर भोजन बनायें और पवित्रतापूर्वक बनाये हुए भोजन को प्रभु समर्पित करके ईश्वरीय स्मृति में ही उसे ग्रहण करें।

आज कुछ लोग भोजन की सामान्य शुद्धि पर तो ध्यान देते हैं परन्तु वे भोजन की सात्विकता पर ध्यान नहीं देते। अन्यश्च, वे भोजन में मांस, अण्डे, मद्य इत्यादि ऐसी वस्तुएं भी ले लेते हैं जिनके कारण मन में विकार उत्पन्न होते हैं। मनुष्य में कामोत्तेजना, क्रोधाग्नि, जिह्वा के स्वाद की वस्तुओं की लालसा इत्यादि का एक कारण भोजन है। पेट के कारण ही मनुष्य कई पाप कर रहा है। वह पाप की कमाई से बना अन्न ग्रहण करता है। वह झूठ, फरेब, धोखाधड़ी, रिश्वत, आतंक, मुनाफ़ाखोरी इत्यादि ही से अमक्ष्य का भक्षण करता है, अग्राह्य का ग्रहण करता है। इससे ही संसार में अनाचार फैला हुआ है। यदि हम घर-परिवार में पवित्रता-सुख-शान्ति का साम्राज्य चाहते हैं, तब हमें अपनी कमाई, भोजन इत्यादि में भी सुधार करना होगा।

परन्तु, आज यदि कोई मांस, अण्डे, शराब, प्याज़, लहसुन इत्यादि तामसिक पदार्थों को अपने भोजन में लेना बन्द करता है तो उसे मित्र-सम्बन्धी उस पर टीका-टिप्पणी, अट्टहास, मज़ाक-मखौल करते हैं। कोई कहता है – ''अरे भाई, यह तो अब साधु बन गया है; एक दिन घर भी छोड़ जायेगा। इसे समझाओ कि यह इन वस्तुओं को न छोड़े...''। दूसरा कहता है कि– ''यह तो किसी के बहकावे में आ गया है। यदि ये ऐसा भोजन करेगा तो पिछड़ जायेगा। यह अन्य सभी के साथ मिलकर कैसे भोजन कर सकेगा। इसका तो बिरादरी में उठना-बैठना ही बन्द हो जायेगा''। तीसरा कहता है कि–''यदि हम प्याज़, लहसुन इत्यादि भी छोड़ दें तो बाकी क्या रहा? तब भोजन स्वादिष्ट कैसे बनेगा?'' इस प्रकार, भाँति-भाँति के लोग भाँति-भाँति की बातें करते हैं। संसार में ''जितने मुंह उतनी बातें'' –यह उक्ति तो प्रसिद्ध है ही। अत: आज जबकि प्राय: सभी के मुंह को माँस लगा है या सभी प्राय: सभी प्याज़-लहसुन के रक्षक और भक्षक हैं, तब कोई बिरला ही ऐसा होगा जो नया स्वर (Tune) निकालेगा, बाकी सभी तो पुरानी धुन, पुराने स्वर ही में गुण गायेंगे। अत: उनकी बातों में न जाकर व्यक्ति को (i) सिद्धान्त, (ii) विवेक, (iii) न्याय, (iv) अनुभव इत्यादि की बात को अपनाना चाहिये और जिससे जीवन महान बने वह पदार्थ भोजन में ग्रहण करने चाहियें। देवताओं को भोजन में जो वस्तुएं समर्पित नहीं की जातीं, वह उन्हें ग्रहण न करे।

यदि गृहस्थ को आश्रम के समान बनाना चाहते हैं और घर को स्वर्ग के समान बनाने का विचार है तो इसमें ऐसी अशुद्ध, अभक्ष्य, आसुरियता की प्रतीक वस्तुओं को कैसे ला सकते हैं जो कि इस उद्देश्य की पूर्ति में विघ्न डालने वाली है। घर कोई कसाई घर तो नहीं जहाँ बकरी, मुर्गा इत्यादि कटा रखा हो, न ही वह शराब की दुकान है जहाँ लोग नशा लेते हों। परन्तु खेद की बात है कि आज लोगों ने घर में भी 'बार' (Bar) अर्थात् शराब के स्थान बना रखे हैं। क्या इसी का नाम ''वसुधैव कुटुम्बकं'' है? जब मुंह में ऐसे पदार्थ जायेंगे और बोतल वाला व्यक्ति 'भू-तल' पर पड़ा होगा तब वसुधा ही उसका एकमात्र कुटुम्ब होगी क्योंकि बाकी परिवार को तो वह शराब पर वार देगा–कुर्बान कर देगा। आज भोजन के बदलने से मनुष्य की क्या गति हुई है।

4. सन्तुलन प्रेम और नेम का तथा दृढ़ता और कोमलता इत्यादि का

घर-परिवार में व्यवस्था में गड़बड़ होने का एक कारण यह है कि प्रेम और नेम का तथा अन्य प्रकार का भी सन्तुलन (Balance) नहीं है। आज माता बच्चे से इतना प्यार करती है कि इसका गला खराब होने पर भी जब वह आईसक्रीम, कुल्फ़ी इत्यादि खाने के लिये कहता है तो माता उसे खूब कुल्फ़ी खिला देती है। गला और ज्यादा खराब होगा। अत: तब वह नेम (नियम), अर्थात् स्वास्थ्य के सिद्धान्त को भंग करके उसे कुल्फ़ी खिलाने में ही अपनी तथा बच्चे की खुशी मानती है। इसी प्रकार, बाल्यकाल में बच्चा जब चंचलता किये ही चला जाता है तब वह भी उसे बार-बार प्रोत्साहन देती है। वह बच्चे को उच्छृंखल देखकर खुश होती है। परन्तु बड़ा होने पर जब बच्चा चंचल हो कर नियमों का उल्लंघन करता है या अपनी कोई अनुचित या हानिकर फ़रमाइश पूरी कराने की ज़िद्द करता है, तब वह दु:खी होती है। यदि प्रारम्भ ही से वह इसका पालन करती तो यह हालत पैदा ही न होती।

(ii) दृढ़ता और कोमलता का सन्तुलन

इसी प्रकार, यदि मनुष्य में दृढ़ता (Rigidity) और कोमलता (Open mindedness) का सन्तुलन हो तो भी वह कई प्रकार की विकट परिस्थितियों से बच जाएगा। परन्तु वह कभी तो इतना दृढ़ हो जाता है कि किसी अच्छी बात को करने के अनुनय-विनय को भी बिल्कुल ही स्वीकार नहीं करता। चाहे कितने भी लोग उससे कहें, वह किसी की भी नहीं मानता। ऐसी जिद्द कर लेता है कि एक इंच भी नहीं हिलता और कभी वह बे-पेंदे के लोटे की तरह लुढ़क जाता है। किसी के द्वारा थोड़ी-सी उसकी कठिनाई सुनकर उसे राहत देने के लिये अपने नियमों को भी छोड़ने लग जाता है। कभी तो उसका मन फ़ौलाद (steel) की तरह सख्त होता है और कभी वह एक मिनिट में ही फुसलाहट में आ जाता है और ग़लत काम करने को भी तैयार हो जाता है। वास्तव में व्यक्ति को चाहिये कि वह अपने नियमों-मर्यादाओं में दृढ़ रहे क्योंकि उनके बिना उसके जीवन में विशेषता ही क्या है? किसी को उचित मर्यादापूर्वक सहयोग देने में ही भले वह कोमलता को सामने लाये परन्तु आज परिवार के कई सदस्य इसके विपरीत ही करते हैं जिससे कि परिणाम ठीक नहीं निकल रहे।

(iii) व्यवहार और परमार्थ का सन्तुलन

आज कई घर परिवार ऐसे हैं जहाँ परमार्थ नाम की कोई चीज़ नहीं है। वहाँ न तो सदस्य ज्ञान-अध्ययन करते हैं न हीं इकट्ठे होकर किसी समय किसी जगह योगाभ्यास या गुण-चर्चा करते हैं। वे सारा दिन सांसारिकता में ही लगे रहते हैं। प्रात: उठने से व्यापार, दफ्तर इत्यादि की बातें सोचने लगते हैं, आटा-दाल, दूध-घी, दाना-पानी, मकान-दुकान, गाड़ी-मन्यारी, बेटे-बेटी, पेट-पेटी, दोस्त-गोश्त, शराब-कबाब, लेन-देन इत्यादि के चक्कर में उलझे रहते हैं। दो घड़ी या आधी घड़ी भी मन को विश्राम नहीं देते, उसे आन्तरिक सुख की अनुभूति नहीं करने देते, स्वयं को जानने तथा प्रभु को पहचानने के लिये भी समय नहीं निकालते। ऐसे अफ़रा-तफ़री में दिन निकल जाते हैं और प्राण-पंखेरू हो जाते हैं। घर-परिवार था तो इसलिये कि रोटी-दाल भी खायें और प्रभु के भी गुण गायें। कुछ ज्ञान सुनें, कुछ सुनाएं। परन्तु आज वे केवल सोने-धोने, खाने-पीने, रहने करने के लिये ही स्थान है। वहाँ भगवान का तो कोई स्थान ही नहीं है। जिस घर में प्रभु का नाम-ध्यान-गुण-गाण न हो, जहाँ से भगवान को ही निकाल दिया होगा, उसका क्या हाल होगा? भले ही वह मालामाल हो तो भी वहाँ सुख-शान्ति का तो सदा सवाल (प्रश्न) बना ही रहता है अत: व्यवहार और परमार्थ का भी सन्तुलन बना रहना चाहिये। तभी घर-परिवार में रुहानियत, अलौकिकता और शान्ति होगी।

(iv) अन्तर्मुखता और बाह्यमुखता का सन्तुलन

कुछ लोग ऐसे होते हैं जो प्राय: चुप रहते हैं, अलग-अलग रहना ही पसन्द करते हैं, हंसी-विनोद से भी दूर हटते हैं और इधर-उधर की बातें करना पसन्द नहीं करते। समय को व्यर्थ न गंवाना, कम-बोलना, एकान्तप्रिय बनना तो अच्छी बात है परन्तु समय पर बोलना, मिलना-जुलना, संगठन में शामिल होगा, मन में कोई द्वन्द्व हो तो किसी वरिष्ठ योगाभ्यासी से परामर्श करके हल लेना या अन्य किसी समस्या में मार्ग-प्रदर्शना लेना भी तो कभी-कभी बहुत ज़रूरी हो जाता है। इसे यदि कोई 'बाह्यमुखता' भी कहे तो भी यह ज़रूरी है। मन के विचार-उद्गार इत्यादि व्यक्त करने से भी तो व्यक्ति का विकास होता है। बातचीत से भी तो कई बातें सीखने को मिलती हैं। परस्पर मेल-जोल से परिवार की जो अनुभूति होती है, उससे उमंग-उत्साह भी तो बढ़ता है। अत: न अति में बोलना ठीक है, न अति में चुप रहना–दोनों के बीच की स्थिति ही ठीक है।

इसी प्रकार, अन्य भी कई प्रकार के सन्तुलन हैं। उन सभी को जीवन में लाने से निजी विकास तो होता ही है परन्तु, उसके अतिरिक्त, घर-परिवार में भी एक सुन्दर वातावरण और संगठन बन जाता है जो सभी के लिये उपयोगी होता है।

5. समान व्यवहार करना

कई घरों में सबके साथ एक-जैसे व्यवहार नहीं होता। यदि माँ एक बच्चे को प्यार देती है तो दूसरे को उससे अधिक या कम प्यार देती है। यह बात वर्षों तक, बल्कि जीवन-पर्यन्त चलती रहती है। सास (Mother-in-law) एक बहु को अधिक प्यार करती है तो दूसरी को कम। बड़ी

बहू का एक देवर से कुछ व्यवहार होता है, दूसरे से कुछ और। इसकी बजाय यदि सभी से न्याय-संगत व्यवहार होता है, सभी को स्नेह-प्यार मिलता है, सभी पर कृपा-दृष्टि बनी रहती है, सभी को सहयोग दिया जाता है, तो घर-परिवार का वातावरण अच्छा होता है वर्ना परस्पर ईर्ष्या-द्वेष, मनमुटाव, नाराज़गी इत्यादि का वातावरण होता है। हम सभी को यह ध्यान रखना चाहिये कि इस प्रकार के पक्षपात, अन्याय और अविवेकपूर्ण व्यवहार का परिणाम अपने लिये भी ख़राब होता है और घर-परिवार को भी बिगाड़ता है। इस प्रकार के व्यवहार से बचना चाहिये।

6. भूल मान लेना तथा प्रायश्चित करना

मनुष्य कई काम अच्छे और ठीक करता है और किसी कार्य में उससे कुछ भूल भी हो जाती है। ऐसी अवस्था में जब उससे पूछा जाता है कि क्या उसने फलाँ ग़लती की है तो कई बार वह बात को छिपाता है। कभी-कभी तो वह झूठ भी बोलता है। यह तो गोया एक भूल में दूसरी भूल जोड़ना है। भूल को मान लेने से मन कुछ तो हल्का हो ही जाता है।

केवल भूल मानना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि प्रायश्चित करना भी ज़रुरी है। प्रायश्चित करने से ही मनुष्य दूसरी बार फिर भूल करने से बच जाता है। सच्चे मन से प्रायश्चित करने का अर्थ है–भूल से होने वाली हानि को तथा भूल की गम्भीरता को गहराई से महसूस करना और मन में यह दृढ़ संकल्प करना कि ऐसा निकृष्ट कर्म मुझ द्वारा फिर नहीं होगा। भूल करने के फलस्वरूप लज्जा करना, भूल को शूल मानना और भूल की विकारालता के कारण उससे घृणा पैदा हो जाना ही प्रायश्चित का सही रूप है। भूल करने के बाद खेद (sorry) प्रगट करना भी पश्चाताप का प्राथमिक एवं हल्का रूप है।

घर-परिवार में कोई-कोई ऐसा सदस्य होता है जो भूलकर के अपनी भूल स्वीकार नहीं करता। वह उसे सही सिद्ध करने का यत्न करता है। प्रश्न पूछने और छानबीन करने पर जब उसकी भूल प्रत्यक्ष हो जाती है, तब भी वह सरलता से, स्पष्टता से और मन की गहराई से स्वीकार नहीं करता। इस प्रकार से भूल का अन्त नहीं होता न ही भूल हल्की होती है। बल्कि वह भूल बार-बार होती है और संस्कार बन जाता है। घर-परिवार कोई पुलिस-चौकी या सी.बी.आई. (CBI) का दफ़्तर तो नहीं है, अत: यहाँ भूल मानने से व्यक्ति को देहली के तिहाड़ जेल में तो भेज नहीं दिया जायेगा। तब भूल मानकर मन को स्वच्छ बना लेने में क्या आपत्ति है? हमारा लक्ष्य तो भूल-रहित और धूल-रहित बनना है। अत: जिस प्रकार भी हम इन दोनों से निकल कर सम्पूर्णता की ओर आगे बढ़ सकें, वैसे ही हमें करना चाहिये।

घर-परिवार में यदि कोई भूल करने पर भी उसे स्वीकार नहीं करता तो उससे उसकी छवि उत्तम नहीं बनती, बल्कि अन्य सदस्यों में उसके बारे में यह विचार पक्का हो जाता है कि यह व्यक्ति भूल को छिपाता है। अत: यदि कभी उसने भूल न भी की हो तो भी अन्य सदस्य यह समझते हैं कि इसने भूल की तो होगी परन्तु यह छिपा रहा है। इसकी बजाय जो अपनी भूल बता देता है या स्वीकार करता है, उसके बारे में सभी के मन में यह भाव बैठता है कि यह सच्चा है। उससे मन एक-दूसरे के और ज्यादा समीप आते हैं। यह मानसिक निकटता ही परिवार को बनाये रखती है।

7. अपने तथा दूसरों के बारे में अनभिज्ञता एवं भ्रान्ति

संसार में तथा घर-परिवार में संघर्ष, विवाद तथा झगड़े का कई बार यह भी कारण होता है कि कुछ सदस्य स्वयं को बहुत-कुछ मानते हैं और दूसरों को बहुत कम। किसी व्यक्ति की क्या योग्यताएं हैं इसका ठीक तरह अन्दाज़ा (estimate) लगाना उन्हें नहीं आता। वे अपनी सामर्थ्य को या तो बहुत मानते (Over estimate करते) हैं या कम मानते (under estimate) हैं। अगर अधिक मानते हैं तो उनमें अभिमान (Ego) आ जाता है और अपनी डींग (Boosting) मारते हैं और बात-बात में प्रसंग के बिना ही अपनी प्रशंसा करते हैं। इससे उनका व्यवहार कई बार दूसरों के लिये पिटा-पिटाया (Boring) हो जाता है या तो उन्हें चिढ़ (irritation) होती है, या वे तंग आ जाते हैं या किसी समय उनके लिये यह असह्य भी हो जाता है। यदि वे अपनी योग्यताओं, शक्तियों इत्यादि को कम मानते हैं तो उनमें आत्म-विश्वास की भी कमी हो जाती है और वे किसी भी कार्य को करने के लिये अपनी असमर्थता प्रगट करते हैं, किसी अन्य को वह कार्य सौंपने के लिये सुझाव देते, स्वयं करने से आनाकानी या इन्कार कर देते हैं और इससे वरिष्ठ जनों को वा समकक्ष वालों को परेशानी होती है, समय पर धोखा मिलता है या बार-बार कहने में उनका समय व्यर्थ जाता है।

इसके विपरीत यदि कोई दूसरे व्यक्ति की योग्यताओं, कलाओं, विशेषताओं या चरित्र इत्यादि को कम मानता (under estimate करता) है, तो उसके व्यवहार में उस व्यक्ति के प्रति दृष्टि-वृत्ति और उसके व्यवहार में भी वह अन्तर देखने में आता है। वह उन्हें कम बुद्धि, कम योग्यता, कम सामर्थ्य वाला या कम चरित्र वाला व्यक्ति मानकर उनसे व्यवहार करता है जिससे कि उस व्यक्ति को यह बात बहुत बुरी लगती है और इस प्रकार सम्बन्धों में बिगाड़ आता है। यदि वह उन्हें अधिक बुद्धिवान, अधिक समर्थ, अधिक चरित्रवान या कुशल व्यक्ति मानकर उनसे व्यवहार करता है तो वह उन्हें ऐसा कोई कार्य ज़िम्में लग देता है जो उनसे हो नहीं सकता और इस प्रकार वह उस व्यक्ति से धोखा खा जाता है। इस प्रकार की भ्रान्ति (misunderstanding) से तनाव या टकराव होता है और दबाव पड़ता है और संघर्ष होता है।

अत: ठीक प्रकार से अन्दाजा लगाने के लिये मनुष्य में पहचान होनी चाहिये और ठीक अन्दाज़ा लगा सकने की योग्यता होनी चाहिये जो कि अन्त:प्रेरणा (intuition), पूर्व-अनुभव, निर्णय शक्ति, बुद्धि की स्पष्टता आदि पर आधारित हो और योग-युक्त स्थिति से उपजी हो। इसके लिये मन की शुद्धि तथा सहज बुद्धि की आवश्यकता है।

परन्तु घर-परिवार के सभी व्यक्तियों में यह योग्यता तो होती नहीं है। अत: व्यक्ति की परखने की योग्यता की कमी और उससे उत्पन्न भ्रान्तियों के कारण भी व्यवहार में त्रुटियाँ आ जाती हैं और परस्पर मन-मुटाव होते हैं। ऐसी हालत में क्या किया जाये? वैसे भी कहा गया है कि सागर की गहराई को जानना इतना कठिन नहीं हैं जितना मनुष्यों के गुण-दोषों को या उसके मन को गहराई से जानना कठिन है। ऐसी असमर्थता के परिणामस्वरूप होने वाली भ्रान्ति और उस भ्रान्ति से पैदा होने वाली कठिनाइयों से कैसे बचा जाये? मनुष्य को कैसे जाना जाये–इस विषय में अनुभव करते-करते भी तो समय लगता है; तब यह सीखने से पहले क्या किया जाये।

यदि किसी का अपना स्वभाव सरल हो और उसके सम्बन्ध मधुर हों और वह सच्चाई से व्यवहार करता हो तो किसी व्यक्ति की क्षमता-असमर्थता और योग्यता-अयोग्यता का अन्दाज़ा लगाने में उसकी भूल को लोग बुरा नहीं मानते। वे सोचते हैं कि ये व्यक्ति भोला है अथवा इसमें इस बारे में जानकारी नहीं है परन्तु यदि किसी में जानकारी या कुशलता की कमी हो और फिर भी वह स्वयं को इस विषय में कुशल मानने का प्रदर्शन करे तब वह दूसरों को अख़रता है। विशेष बात तो यह है कि यदि मनुष्य भूल करने पर अपनी भूल के लिये सच्चे मन से खेद प्रगट करता है तो उसकी भूल को दूसरे सदस्य जाने देते हैं। कभी-कभी अपनी भूल, नासमझी या अयोग्यता पर स्वयं ही हंस देना भी दूसरों को हल्का कर देता है और कभी उसे गंभीर भूल मानने की अभिव्यक्ति करना भी ठीक रहता है। कुछ भी हो, अन्य सदस्यों के साथ आत्मीयता और सच्चाई से व्यवहार करने से प्राय: कठिनाइयाँ मिट जाती हैं।

8. सन्तुष्टता से सौ सुख

अन्य सभी दिव्य गुण तो 'गुण' ही हैं परन्तु सन्तुष्टता एक 'महागुण' है – यह अन्य गुणों से कई गुणा है। इसमें अनेक गुण समाए हुए हैं। इसके न होने से मनुष्य के चरित्र में कई अवगुण-दुर्गुण प्रगट होते हैं। सन्तोष एवं सन्तुष्टता न होने का यह अर्थ है कि कई इच्छाएं हैं जिन्हें व्यक्ति पूर्ण करना चाहता है। यदि इच्छाएं हैं तो उनके पूर्ण न होने पर खेद अथवा दु:ख होगा और क्रोध आयेगा। कोई बड़ी इच्छा पूरी करने में असफल होने पर तनाव या मायूसी (Depression) आयेगी। इच्छा पूरी होने में यदि कोई बाधा डालेगा तो उस से घृणा होगी। अन्य जिसको उसकी प्राप्ति है, उससे ईर्ष्या पैदा होगी। असन्तुष्ट व्यक्ति को जितनी अभी प्राप्तियाँ हुई-हुई हैं, वह उनका भी सुख नहीं अनुभव कर पायेगा। वह सदा संग्रह करने की प्रवृत्ति में लगा रहेगा और संग्रह करके उसे सुरक्षित करते रहने की चिन्ता में रहेगा। असन्तुष्ट व्यक्ति अपने घर-परिवार की कमियों-कमजोरियों के बारे में दूसरों को सुनाता रहेगा और उससे न केवल अपने ही परिवार की प्रतिष्ठा को बिगाड़ेगा, परिवार के साथ अपनी भी साख को ख़राब करेगा। असन्तुष्टता मन की स्थिति को बहुत नीचे ले आना वाला दुर्गुण है। सन्तोष सबसे बड़ा धन है क्योंकि जिसके पास यह है, उसके पास सभी-कुछ है। दूसरे प्रकार के धन से शान्ति या पवित्रता नहीं ख़रीदी जा सकती परन्तु इससे तो एक भी कौढ़ी खर्च करे बिना पवित्रता और शान्ति भी ख़रीदी जा सकती है। अत: यदि घर-परिवार में हरेक व्यक्ति में सन्तोष और सन्तुष्टता रूपी गुण आ जाये तो घर-परिवार सुखी हो सकता है। इसके लिये इच्छाओं को कम करके आन्तरिक सुख की अनुभूति करने पर ध्यान देने की ज़रूरत है। अत: अब प्रश्न यह रह जाता है कि इच्छाओं, तृष्णाओं इत्यादि को कैसे शान्त किया जाये।

इच्छा और तृष्णाओं की शान्ति को वैराग्य ही लाता है। वैराग्य से त्याग होता है। जहाँ त्याग है वहाँ इच्छाएं नहीं होती। जहाँ इच्छाएं ही न हो, वहाँ स्वार्थ कैसे हो सकता है? जहाँ स्वार्थ नहीं है, वहाँ ईर्ष्या-द्वेष, घृणा, दूसरों के साथ अपनी प्रतिस्पर्धा या मुकाबला (Competition) क्यों होगा? जहाँ ये सभी नहीं हैं, वहाँ ही तो देवत्व का निवास है और जहाँ देवत्व हैं, वहाँ ही तो स्वर्ग अथवा पूर्ण पवित्रता, सुख और शान्ति है।

9. समय की पहचान

आखिर प्रश्न यह है कि घर-परिवार में रहने वाले व्यक्ति को इच्छाएं तो स्वाभाविक रूप से होंगी ही, वर्ना यदि उसमें पूर्णत: वैराग्य होगा तब तो वह सन्यासी बन जायेगा। अत: परिवार में रहते हुए इच्छाओं से पार कैसे हों? इसके लिये वर्तमान समय की पहचान की ज़रूरत है। समय के चिह्न ही बताते हैं कि अब कैसा समय चल रहा है और इसके बाद कैसा समय आने वाला है। समय और सीज़न (season) को देखकर ही तो व्यक्ति काम करता तथा योजना बनाता है।

वर्तमान समय के बारे में अलग-अलग प्रकार के विशेषज्ञ निम्नलिखित बातें बताते हैं –

(1) अब एटम तथा हाइड्रोजन बम तथा मिसाइल्स (missiles अथवा प्रक्षेप्यास्त्र) बहुत ही संख्या में तथा बहुत ही शक्तिशाली बन चुके हैं और वे ऐसे देशों के हाथ में हैं जो सत्ता, हिंसा और युद्ध-नीति के पक्षपाती हैं। वे इतने और ऐसे हैं कि उन द्वारा संसार का कई बार विनाश किया जा सकता है।

(2) पर्यावरण प्रदूषण बहुत बढ़ गया है और बढ़ता जा रहा है। बहुत ही अधिक जंगलों एवे वृक्षों को काट दिया गया है, वन-उपवन नष्टकर दिये गये हैं क्योंकि मनुष्य नगरों के फैलाव का पक्षपाती है और उद्योंगों को बढ़ावा देने के बारे में भी समर्थक है यद्यपि वह देख रहा है कि उनसे पर्यावरण कितना प्रदूषित हो चुका है।

(3) कुछेक ऐसे रायासनिक पदार्थ (chemicals) हैं, जिनका प्रयोग फ्रिज़ (Fridge), रीफ्रेश्नर (Refreshner) इत्यादि के निर्माण में प्रयोग होता है। उनसे आकाश में ऊपर जा कर ओज़ोन (Ozone) नामक जीवनोपयोगी गैस की परत में महाछेद (Holes) हो गये हैं। उसके परिणामस्वरूप सूर्य की अल्ट्रा वायलेट रश्मियाँ (Ultra-violet rays) पृथ्वी पर अधिक मात्रा में आ रही हैं। यदि ऐसा होता रहा तो पहाड़ों पर जमी हुई बर्फ के ढेर पिघल कर बर्फ की चट्टानें नीचे फिसल आयेंगी और उससे सागरों में पानी का तल इतना ऊंचा उठ जायेगा कि सागर तट पर बसे कई देश तथा नगर नष्ट हो जायेंगे।

4. शहर इतने फैलते जा रहे हैं और औद्योगीकरण इस गति से हो रहा है कि सभ्यता और संस्कृति की रूप-रेखा भी बदलती जा रही है। तीव्र गति में रहने-सहने तथा उत्पादन के तरीकों में परिवर्तन आ रहे हैं और समाज में एक ओर तो भौतिकवाद, भोगवाद, वाणिज्यवाद की वृत्ति सब वृत्तियों से अधिक बलवान बनती जा रही हैं और दूसरी और ग्राम घटते जा रहे हैं। इस प्रकार के महापरिवर्तन से तनाव और उससे होने वाली बीमारियाँ इतनी बढ़ती जा रही हैं। जिसके परिणाम बहुत भयंकर होंगे।

5. नगर इसलिये बढ़ रहे हैं कि जन-संख्या तीव्र गति से बढ़ती जा रही है। जन-संख्या में इस वृद्धि के परिणाम भी बहुत भयावह हैं; इससे जन-विस्फोट (Population Explosion) होने की संभावना है।

6. घर-परिवार, व्यक्ति एवं समाज से नैतिक मूल्यों का बहुत तीव्र गति से ह्रास हो रहा है। इन मूल्यों में ह्रास का कारण कलह-कलेष, हिंसा, रिश्वत, मिलावट इत्यादि अनेक निकृष्ट

कर्म बढ़ रहे हैं और इस गति से तो विधि-विधान का पालन ही बन्द हो जायेगा और लड़ाई-झगड़े, दंगे-अपराध इत्यादि इतने होने लगेंगे कि असुरक्षा के कारण मनुष्य भयभीत हो उठेगा।

इस प्रकार और भी बहुत-से चिह्न बताये जाते हैं जो यह जतलाते हैं कि संसार एक महाविनाश की ओर आगे बढ़ रहा है। दूसरी ओर लोग स्वयं देख रहे हैं कि इन विनाश के पर्दे के पीछे सतयुग छिपा है। अभी का समय कलियुग के अन्त और सतयुग के आरम्भ के संगम का समय है। एक ओर महाविनाश निकट आ रहा है और उसके थोड़ा ही पीछे सतयुग के प्रगट होने की आशा है क्योंकि ऐसे धर्मग्लानी के समय ही परमपिता परमात्मा ईश्वरीय विद्या की शिक्षा देते हैं।

इन लक्षणों अथवा चिह्नों को देखकर तो महावैराग्य आना ज़रूरी है क्योंकि यह कलियुगी, तमोप्रधान सृष्टि तो अब चलने वाली ही नहीं है। अब हमें तो सतयुग की, देवी-देवताओं वाली दुनिया की, ''सुख-शान्तिमय वसुधैव कुटुम्बकम्'' की पूरी तैयारी करनी है। अत: अल्पकालीन प्राप्तियों की इच्छाओं की प्राप्ति की बात छोड़कर सब इच्छाओं, कामनाओं और तृष्णाओं को इसमें मिला देना ही बुद्धिमानी एवं श्रेयस्कर है।

इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि घर-परिवार को या व्यवसाय को छोड़ देना है बल्कि इसका अर्थ यही है कि अब घर-परिवार तथा प्रवृत्ति को पवित्र बनाना है। अब कर्म करते हुए भी योगाभ्यास करना है और स्थिति को योगयुक्त बनाना है। इसमें ही कल्याण है। अब समय थोड़ा है, अत: इस थोड़े-से समय में ही स्वयं को बदलना जरूरी है।

कुछेक प्रश्न

(1) सकारात्मक चिन्तन, सकारात्मक दृष्टिकोण, सकारात्मक निर्णय और सकारात्मक स्मृति से क्या अभिप्राय है? अपने जीवन-वृत्त में से कुछ अनुभव पर आधारित उदाहरण दीजिये जिससे कि इसके लाभ स्पष्ट हों।

(2) क्या सादगी का अर्थ यह है कि सौन्दर्य और साज-सज्जा का ध्यान न रखा जाय। (i) यदि खुशी के अवसर पर सजधज न हो या जीवन में वस्त्रों, आभूषणों, घरों, दुकानों इत्यादि की सजावट न की जाए तो क्या यह संसार फीका सा नहीं लगेगा? (ii) क्या बदलते रिवाज के अनुसार यदि वस्त्रों, आभूषणों इत्यादि को बदला न जाए तो क्या हम पुराने पैथी या पिछड़े वर्ग के नहीं प्रतीत होंगे और यह हमारी बुद्धि के आलस्य का प्रतीक न माना जायेगा? (iii) 'फैशन' से क्या अभिप्राय है और शरीर तथा उसके काम में आने वाली चीज़ों को सुन्दर बनाना ग़लत होगा? (iv) सादगी की ऊपरी और निम्नतम सीमा क्या है? (v) कुछ समय पहले जिसे तत्कालीन लोग ''फैशन परस्ती'' मानते थे क्या वही आज सामान्य वेश-भूषण या सादगी नहीं है?

(3) माँसाहार तो तामसिक भोजन है और उस पद्धति में पशुओं को भी मारा जाता है परन्तु प्याज और लहसुन तो सब्ज़ी हैं, उनमें जीवन हत्या भी नहीं है, तब उन्हें क्यों न भोजन का हिस्सा माना जाय? (i) भगवान को भोग लगाने का क्या अर्थ है? क्या वे भोजन खाते हैं?

(4) 'गृहस्थ आश्रम' शब्द का अर्थ हम आयु के आधार पर लेने के साथ-साथ, स्थान की पवित्रता और रूहानियत के आधार पर क्यों न लें?

(5) प्रेम और नेम के सन्तुलन का क्या अर्थ है? क्या ऐसा सन्तुलन वर्तमान समय आज घर-परिवार में है? इस सन्तुलन को फिर से स्थापित करने के लिये किन बातों को ख्याल में रखा जाय?

(6) व्यवहार और परमार्थ के सन्तुलन में से भी पहले किसको महत्व दिया जाए? क्या ऐसा अनुभव नहीं किया गया कि परमार्थ से ही व्यवहार भी सिद्ध होता है? क्या आप ऐसा कोई अनुभव किया हुआ उदाहरण दे सकते हैं?

(7) 'अन्तर्मुखता' से क्या अभिप्राय है? (i) यह क्यों कहा गया है कि 'अन्तर्मुखी सदा सुखी'? (ii) क्या आपको अन्तर्मुखता का अनुभव है? संक्षेप में वर्णन करें।

(8) संसार में न्याय-संगत कैसे हो सकता है? (i) क्या हरेक का स्थान अलग-अलग नहीं है? (ii) क्या हरेक की उपयोगिता और उसके कार्य का मूल्य अलग-अलग नहीं है? तब हरेक के साथ समानता का व्यवहार करने का क्या अभिप्राय है? (iii) क्या पक्षपात-रहित, शोषण-रहित हरेक को उसके अनुसार उन्नति एवं प्रगति का अवसर देना ही समान व्यवहार करना नहीं है?

(9) क्या भूल को मान लेने से आगे के लिए लोगों के मन में हम पर खराब इम्प्रेशन (Bad impression) नहीं पड़ेगा? (i) सच्चे प्रायश्चित की क्या निशानी है? (ii) क्या भूल को बुरा मानना या हल्का मानना यह मनुष्य के अपने दृष्टिकोण पर निर्भर नहीं है? इस प्रसंग में कोई उदाहरण देंगे?

(10) अपने तथा दूसरों की कार्यकुशलता, योग्यता, कमी, चरित्र इत्यादि के बारे में अनभिज्ञता या भ्रान्ति के बारे में क्या आपका कोई अनुभव है? क्या कभी आपसे किसी ने ऐसा अनुभव किया हो या आपने अनजाने में किसी के साथ इस भ्रान्ति से व्यवहार किया हो और उसका दु:खान्तक परिणाम निकला हो?

(11) वर्तमान समय जो वैश्विक परिस्थिति हैं, उससे क्या लगता है कि अब कैसा समय है? (i) क्या आप ऐसा मानते हैं कि यह कलियुग अभी बहुत समय चलेगा? (ii) क्या आप ऐसा मानते हैं कि यदि हम सभी सही पुरुषार्थ करें तो सतयुग आ सकता है?

(12) सन्तुष्टता 'महागुण' कैसे है? सन्तोष न होने से मनुष्य भिखारी कैसे बना रहता है, और उसमें इच्छा, क्रोध, घृणा, द्वेष, ईर्ष्या इत्यादि दुर्गुण कैसे आते हैं?